## ईकाई – 3

### प्रस्तावना (Introduction)

गत ईकाई में हमने राज्य के आज्ञा पालन के व्यक्तिवादी तथा उपयोगितावादी आधारों का अध्ययन किया था। यह ईकाई राजनीतिक चिन्तन के आदर्शवादी सिद्धान्त से सम्बन्धित है। आदर्शवादी विचारधारा जिसका विकास विभिन्न शाखाओं के द्वारा हुआ तथा जो राजनीतिक चिन्तन में एक विरोधाभासी विचारधारा के रूप में मानी जाती है। इस ईकाई में आदर्शवाद के ऐसे ही दो महान चिन्तकों (आदर्शवादी) की दार्शनिकता को समझने का प्रयास करेगें जिनमें से हीगल ने व्यक्ति को साधन तथा राज्य को साध्य मानते हुए राज्य की उत्पत्ति तथा विश्वात्मा का सिद्धान्त दिया तथा टी.एच.ग्रीन ने हीगल के विपरीत व्यक्ति को साध्य तथा राज्य को साधन मानते हुए व्यक्तिगत स्वतन्त्रता तथा अधिकारों का सिद्धान्त दिया।

### उद्देश्य (Objective)

1. आदर्शवाद का अर्थ समझना व इसकी विभिन्न शाखाओं पर विस्तार से चर्चा करना।
2. हीगल के विश्वासात्मक के सिद्धान्त के माध्यम से महान जर्मन सम्राज्य की स्थापना को समझना।
3. टी.एच.ग्रीन के विचारों के माध्यम से उदार आदर्शवाद के स्वरूप को समझना।
4. व्यक्तिगत स्वतन्त्रता और सामाजिक स्वतन्त्रता के सम्बन्ध को समझना।

# अध्याय – 5

# जॉर्ज विल्हैल्म फ्रेड्रिक हीगल

# (George Whilhelm Friedrich Hegel)

## 5.1 प्रस्तावना (Introduction).

हीगल के बारे में प्रसिद्ध उक्ति है कि वह केवल दार्शनिकों का राजा ही नहीं था, बल्कि राजाओं का दार्शनिक था। वेपर का कथन है कि ''हीगल राज्य के सावयव सिद्धान्त का सबसे महान दार्शनिक तथा आधुनिक इतिहास के भाष्यकारों के मध्य एक महत्वपूर्ण तथा प्रभावशाली चिन्तक था।'' विश्व के बहुत सारे प्रसिद्ध विचारकों तथा व्यक्तित्वों पर हीगल की विचारधारा ने प्रभाव डाला। कार्ल मार्क्स जो अपने आप में ही एक ऐसे विचारक हैं जिन्होंने विश्व को सबसे ज्यादा प्रभावित किया है, वह भी अपने द्वन्दवाद के सिद्धान्त के लिए हीगल का ऋणी रहेगा। उसने हीगल के वैचारिक द्वन्दवाद के सिद्धान्त से आधार लेकर उसे भौतिक द्वन्दवाद में परिवर्तित किया। बट्रेन्ड रसेल के अनुसार 19वीं शताब्दी के अन्त में अमेरिका तथा इंग्लैंड के सभी प्रमुख दार्शनिक हीगल के अनुयायी थे। 20वीं शताब्दी की प्रमुख विचारधाराओं जिन्होंने पूरे विश्व का स्वरूप ही बदल दिया– फासीवाद तथा नाजीवाद का जन्म हीगल द्वारा राज्य के दैवीय संस्था बनाने तथा उसे निरंकुश सत्ता प्रदान करने का परिणाम समझा जाता है। जर्मनी के महान् राजनेता एवं कूटनीतिज्ञ बिस्मार्क ने हीगल के सिद्धान्तों को मूर्त्तरूप प्रदान किया था। हीगल एक महान् द्वन्दवादी विचारक थे जिनकी सृजनात्मक उपलब्धियां दार्शनिक तथा राजनीतिक विधिक चिन्तन के समूचे इतिहास में एक अत्यन्त महत्वपूर्ण मील का पत्थर है। जर्मन आदर्शवादियों तथा विश्व के आदर्शवादी विचारकों में हीगल का नाम बड़े सम्मान के साथ लिया जाता है।

## 5.2 उद्देश्य (Objectives)–

इस विचारक के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होगें–

- जर्मन आदर्शवाद की पृष्ठभूमि को समझने के।

- हीगल के द्वारा दिए गए राज्य के सिद्धान्त को समझने के।
- हीगल के द्वारा मनुष्य के अधिकारों तथा कर्त्तव्यों के वर्णन के बारे में जानने के।
- हीगल के 'विश्वात्मा' के सिद्धान्त को समझने के।

## 5.3 जीवन परिचय (Life Sketch)

जर्मनी के प्रसिद्ध आदर्शवादी दार्शनिक हीगल का जन्म 1770 ई० में स्टटगार्ट नामक नगर में हुआ। हीगल के पिता वुर्टमवर्ग राज्य में एक सरकार कर्मचारी थे। वे हीगल को धार्मिक शिक्षा दिलाना चाहते थे। 18 वर्ष की आयु तक हीगल ने स्टटगार्ट के 'ग्रामर स्कूल' में शिक्षा ग्रहण की। 1788 ई० में उसने ट्यूबिनजन के विश्वविद्यालय में धर्मशास्त्र पढ़ना शुरू किया और 1790 में दर्शनशास्त्र के डॉक्टर की उपाधी प्राप्त की। यहाँ पर उसने कठोर परिश्रम किया। लेकिन धार्मिक विषयों की अपेक्षा उसने यूनानी साहित्य में रूचि दिखाई। वह दर्शनशास्त्र का प्रोफेसर बनान चाहता था। 1793 में उसे 'धर्मशास्त्र का प्रमाण –पत्र' प्राप्त किया। इस प्रमाण – पत्र में उसे दर्शनशास्त्र का कम ज्ञान होने की बात अंकित थी। यहाँ पर उसका परिचय कवि होल्डरलिन तथा प्रसिद्ध दार्शनिक शेलिंग से हुआ। उनके प्रभाव से उससे यूनानी दर्शन का अध्ययन किया। उसने प्लेटो के तत्त्वशास्त्र तथा यूनानी नगर राज्य की प्रशंसा करनी शूरू कर दी। उसके जर्मनी विभाजन के कारण यूनानी नगर राज्यों पर विचार करना शुरू कर दिया। उसने यूनानी चिन्तकों द्वारा उपेक्षित स्वतन्त्रता के विचार को आगे बढ़ाया। 1796 में उसने 'The Positivity of the Christian Religion' नामक लेख में जेसस के सरल धर्म का समर्थन किया। 1799 में उसने ईसाई धर्म को यूनानी तथा काण्ट के दर्शन में समन्वय करने का प्रयास किया।

अपना अध्ययन कार्य समाप्त करने के बाद हीगल ने स्विटरजरलैण्ड के बर्न नामक नगर में निजी शिक्षक के रूप में कार्य किया। 1797 में उसने बर्न को छोड़कर फ्रेंकफर्ट में निजी – शिक्षक के रूप में कार्य करते हुए अपनी धर्मशास्त्र में रूचि

जारी रखी। उसने धर्मशास्त्र के अध्ययन से यह निष्कर्ष निकाला कि ईश्वर का ज्ञान केवल धर्म के द्वारा ही प्राप्त किया जा सकता है। लेकिन उसने अपने इस विचार में परिवर्तन करते हुए कहा कि ईश्वर का ज्ञान धर्मशास्त्र की तुलना में दर्शनशास्त्र द्वारा सरलता से प्राप्त किया जा सकता है। 1799 में उसके पिता की मृत्यु से उसकी आजीविका की समस्या का समाधान भी निकल आया। उसकी इच्छा प्राध्यापक बनने की थी। उसने जीना विश्वद्यिालय में अपने पिता से प्राप्त 1500 डालर की आर्थिक सहायता से अध्यापक पद प्राप्त करने का प्रयास किया। जीना उस समय जर्मनी के सांस्कृतिक पुनरूत्थान तथा पुनरूज्जीवन का केन्द्र बना हुआ था। उस समय वहाँ पर फिक्टे, शेलिंग, श्लेगल पढ़ा रहे थे। उन प्रकाण्ड विद्वानों के सम्पर्क में आने पर हीगल को भी अपनी प्रतिभा निखारने का अवसर प्राप्त हुआ। उसे जीना विशविद्यालय में ही 1803 ई० में अस्थायी प्राध्यापक की नौकरी मिल गई और 1805 में उसकी सेवा स्थायी हो गई। लेकिन भाग्य ने उसका साथ नहीं दिया। 1806 ई० में नेपोलियन की सेनाओं ने जीना नगर में प्रवेश किया। हीगल को भी अपनी जान बचाने के लिए जीना छोड़ना पड़ा, क्योंकि इस युद्ध में जर्मनी की हार तथा नेपोलियन की जीत हुई। इससे जीना में शिक्षा – कार्य अस्त–व्यस्त हो गया और हीगल को भी प्राध्यापक का पद छोड़ना पड़ा। नौकरी छूट जाने पर हीगल की आर्थिक स्थिति खराब हो गई। इस दौरान गेटे ने भी उसकी मदद की। उसने एक वर्ष तक सम्पादक के पद पर कार्य किया। इसी समय 1807 में उसने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'Phenomenology of Spirit' का प्रकाशन किया। उसने 1808 में न्यूरमबर्ग के एक माध्यमिक विद्यालय में प्रधानाध्यापक के पद को प्राप्त किया और 1816 ई० तक वह इस पद पर रहा। 1811 में उसने बॉन टकर नामक महिला से विवाह कर लिया। उसे अपने परिवार से गहरा लगाव था। इसी कारण उसने आगे चलकर परिवार को महत्त्व पर लिखा। 1816 में उसने 'Logic' नामक ग्रन्थ का प्रकाशन किया। इससे हीगल की प्रसिद्धि बढ़ गई। इसके बाद उसने एरलानजन, बर्लिन तथा हीडलबर्ग विशविद्यालय में अध्यापक कार्य किया। 1821 ई० में उसने 'Philosophy of Rights' नामक रचना का प्रकाशन किया। इस पुस्तक के कारण हीगल की ख्याती राष्ट्रीय और अन्तराष्ट्रीय स्तर तक फैल गई। हीगल ने तत्कालीन

प्रशिया की सरकार की विचारधारा को बदल दिया। इसलिए उसे 'सरकारी दार्शनिक' की भी संज्ञा दी गई। 1830 में उसे बर्लिन विश्वविद्यालय का रेक्टर बना दिया गया। 1831 में बर्लिन में हैजे का प्रकोप बढ़ गया। इस दौरान हैजे की बीमारी से इस महान् दार्शनिक की जीवन लीला समाप्त हो गई।

## 5.4 हीगल पर प्रभाव (Influences of Hegal)

कोई भी चिन्तक समकालीन परिस्थितियों व पूर्ववर्ती विचारकों से अवश्य ही प्रभावित होता है। हीगल भी इसका अपवाद नहीं है। उस पर निम्न प्रभाव पड़े :–

1. **फ्रांसीसी क्रान्ति का प्रभाव :** हीगल के समय में स्वतन्त्रता का विचार चिन्तन का प्रमुख विषय था। लेकिन नेपोलियन के युद्धों ने उसके मन को व्यापक रूप से दुःखी कर दिया। उसने इस क्रान्ति की प्रशंसा इसलिए की थी कि इससे सामन्तवादी व्यवस्था का अन्त होगा और उदारवादी संस्थाओं का विकास होगा जिससे व्यक्ति को स्वतन्त्रता में वृद्धि होगी। फ्रांसीसी क्रान्ति में श्रेणीबद्ध जर्मन – समाज के समक्ष बौद्धिक और सैद्धान्तिक चुनौतियाँ उपस्थित की। हीगल पर इस क्रान्ति का नकारात्मक प्रभाव भी पड़ा। उसने स्वतन्त्रता और सत्ता में समन्वय करने का प्रयास शुरू कर दिया। इस क्रान्ति के बारे में हीगल ने लिखा है कि – "फ्रांस की क्रान्ति शान्दार बौद्धिक उषाकाल थी।"
2. **सुकरात का प्रभाव :** हीगल ने द्वन्द्वात्मक पद्धति को सुकरात से ही ग्रहण किया है, क्योंकि द्वन्द्वात्मक पद्धति के जनक सुकरात ही थे। उसने सुकरात के प्रश्न पूछने के तरीके पर ही अपना चिन्तन खड़ा किया है। सुकरात की वाद, प्रतिवाद व संवाद को प्रक्रिया पर आधारित करते हुए हीगल ने भी राज्य की उत्पत्ति का सिद्धान्त पेश किया। अपने परिवार को वाद, नागरिक समाज को प्रतिवाद तथा राज्य को संवाद पर आधारित किया। उसने कहा कि मानव आत्मा इन्हीं माध्यमों या प्रक्रिया से गुजरकर अपने वास्तविक स्वरूप को प्राप्त करती है। उसने सुकरात की ही तरह संवाद को वाद और प्रतिवाद से श्रेष्ठ माना है।

3. **प्लेटो का प्रभाव :** हीगल अपने अध्ययन के दौरान ही यूनानी दर्शन में रूचि लेने लग गए थे। प्लेटो की ही तरह हीगल का विश्वास है कि व्यक्तियों का सच्चा व्यक्तित्व राज्य के अन्तर्गत ही विकसित हो सकता है। उसका मानना है कि मूलतः व्यक्ति राज्य की सृष्टि है, राज्य के अन्दर ही उसके अधिकार हैं। उसने राज्य को 'पृथ्वी पर भगवान का अवतरण' (March of God on Earth) कहा है। इससे प्लेटो के सर्वसत्ताधिकारवादी राज्य की कल्पना का प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। उसने प्लेटो के 'विचार' सम्बन्धी विचार को भी ग्रहण किया है। इसलिए उसने पदार्थ की तुलना में विचार तत्त्व को ही प्रमुखता दी है। उसका मानना है कि भौतिक वस्तुओं का नाश हो सकता है, विचार का नहीं। उसके अनुसार यह संसार सर्वव्यापी विचार का प्रकटीकरण है।

4. **अरस्तू का प्रभाव :** हीगल ने अरस्तू के सोदेश्यवाद के सिद्धान्त से भी कुछ न कुछ ग्रहण किया। अरस्तू का मानना था कि किसी वस्तु की प्रकृति ही उसका ध्येय है। इसलिए संसार की प्रत्येक वस्तु इस ध्येय को प्राप्त करने के लिए अग्रसर रहती है। इसी प्रकार हीगल ने भी स्पष्ट कहा है कि प्रकृति की प्रत्येक वस्तु का अपना इतिहास होता है। वह अपने उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए आगे बढ़ने के कारण इस इतिहास का निर्माण करती है। हीगल ने अरस्तू की ही तरह निरपेक्ष विचार में भी विश्वास व्यक्त किया है। यह विचार अपनी वास्तविक प्रकृति या रूप को प्राप्त करने का प्रयास करता है। यह विभिन्न स्तरों से गुजरते हुए अन्त में अपने वास्तविक रूप (पूर्णता) को पा लेता है। इस प्रकार हीगल पर अस्तू के सोद्देश्यवादी तथा इतिहासवाद का गहरा प्रभाव है।

5. **मैकियावली का प्रभाव :** शक्ति के पुजारी केरूप में हीगल पर सबसे अधिक प्रभाव मैकियावली का ही पड़ा है। उसने अपनी राष्ट्रवादी धारणा मैकियावली के शक्ति – सिद्धान्त पर ही आधारित की है। हीगल ने स्वीकार किया है कि राजनीति में शक्ति का बहुत महत्त्व है।

6. **रूसो का प्रभाव :** हीगल ने रूसो की 'सामान्य इच्छा' पर ही राज्य को सावयविक स्वरूप प्रदान किया है। उसने 'आत्मा' को प्रभुसत्तासम्पन्न बताया

है। रूसो की सामान्य इच्छा की तरह हीगल ने भी 'आत्मा' को समुदाय की सामान्य भलाई का ध्येय लिए हुए बताया है। हीगल ने निजी हित पर सार्वजनिक हित के विचार की सर्वोच्चता को रूसो से ही ग्रहण किया है। उसने रूसो की सामान्य इच्छा की ही तरह राज्य में ही व्यक्ति का पूर्ण जीवन सम्भव बताया है।

7. **काण्ट का प्रभाव :** हीगल ने 'सकारात्मक भलाई' का विचार काण्ट से ही ग्रहण किया है। उसने कहा है कि राज्य एक सकारात्मक भलाई है। यह युक्ति पर आधारित है। व्यक्तियों को नैतिक बनाने में राज्य महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है। हीगल भी काण्ट की तरह ही राज्य को सर्वशक्तिसम्पन्न तथा निरपेक्ष मानता है। वह व्यक्तियों को राज्य के विरूद्ध क्रान्ति करने की इजाजत नहीं देता। हीगल ने काण्ट के सभी उपयोगी विचारों को ही अपने दर्शन में स्थान दिया है। उसने बुद्धि के अनुसार कार्य करने को ही स्वतन्त्रता कहा है। उसने काण्ट की तरह यह स्वीकार किया है कि विश्व की समस्याओं का समाधान दार्शनिक चिन्तन द्वारा ही किया जा सकता है।

इस प्रकार कहा जा सकता है कि हीगल के विचार दर्शन पर पूर्ववर्ती विचारकों व समकालीन परिस्थितियों का प्रभाव व्यापक है। लेकिन हीगल ने अन्धाधुन्ध अनुकरण करने की बजाय उपयोगी विचारों को ही अपने चिन्तन में ग्रहण किया है। उसने सुकरात, प्लेटो, अरस्तू, फिक्ते, रूसो, मैकियावली, काण्ट आदि विचारकों से ग्रहण किया और उन्हें अपनी आवश्यकतानुसार अपने दर्शन में प्रयोग किया।

**महत्त्वपूर्ण रचनाएँ (Important Works)**

हीगल एक महान दार्शनिक होने के साथ – साथ एक विद्वान लेखक भी था। उसने दर्शन, राजनीति, कला व इतिहास आदि क्षेत्रों में अपना लेखन कार्य किया। जिस समय वह अपनी प्रथम पुस्तक 'Phenomenology of Spirit' लिख रहा था, उस समय जीना पर नेपोलियन ने आक्रमण कर दिया। इससे उसका लेखन कार्य बाधित हुआ। उसने जीना से बाहर जाकर भी अपना लेखन कार्य किया। उसकी रचनाओं का प्रकाशन 1807 ई० में शुरू हुआ। उसकी प्रमुख रचनाएँ निम्नलिखित हैं :–

1. **फिनोमिनोलॉजी ऑफ स्पिरिट (Phenomenology of Spirit, 1807) :** यह पुस्तक हीगल के दार्शनिक विचारों का निचोड़ है। इसमें हीगल ने एक सार्वभौमिक सत्य (Universal Truth) की खोज करने का प्रयास किया है। इस पुस्तक में उसने विश्वात्मा (Geist) का विचार प्रस्तुत किया है।
2. **साईंस ऑफ लॉजिक (Science of Logic, 1816) :** इस पुस्तक में हीगल ने द्वन्द्ववाद का क्रमबद्ध विश्लेषण किया है। इस पुस्तक में दुर्बोधता और जटीलता का गुण होने के कारण हीगल को ख्याति बहुत बढ़ गई।
3. **एनसाइक्लोपीडिया ऑफ दि फिलोसीफिकल साईंस (Encyclopaedia of the Philosophical Sciences, 1817) :** इस पुस्तक में हीगल के व्याख्यानों का सार है। इसमें हीगल ने अधिकारों और स्वतन्त्रता की विस्तृत विवेचना प्रस्तुत की है।
4. **फिलोसॉफी ऑफ राइट (Philosophy of Rights) :** इस पुस्तक में हीगल ने अपने राजनीतिक सिद्धान्तों का व्यवस्थित रूप में निरूपण किया है। इसमें हीगल ने स्वतन्त्रता की अवधारणा पर विस्तृत रूप से चर्चा की है। इस पुस्तक के कारण हीगल की ख्याति राष्ट्रीय व अन्तरराष्ट्रीय स्तर पर बहुत बढ़ गई।
5. **फिलोसॉफी ऑफ हस्ट्री (Philosophy of History) :** इसका प्रकाशन हीगल की मृत्यु के बाद हुआ। यह पुस्तक उन व्याख्यानों का संग्रह है जो बर्लिन विश्वविद्यालय में अध्यापक के रूप में दिए थे। इन व्याख्यानों ने अधिकांश धर्म दर्शन तथा सौन्दर्यशास्त्र पर है। इस पुस्तक में हीगल ने इतिहास की द्वन्द्वात्मक व्याख्या प्रस्तुत की है।
6. **कान्स्टीट्यूशन ऑफ जर्मनी (Constitution of Germany)** : इस पुस्तक का प्रकाशन भी हीगल की मृत्यु के पश्चात् हुआ। इस पुस्तक में टुकड़ो – टुकड़ो में विभाजित जर्मनी की हालत पर प्रकाश डालते हुए हीगल ने एक नीति, एक शासन और एक विधान से युक्त केन्द्रीकृत जर्मन राज्य को पुनर्जीवित करने की आवश्यकता को प्रमाणित किया है। इस प्रकार यह पुस्तक जर्मनी के एकीकरण के उपायों पर गहरा प्रकाश डालती है।

इन रचनाओं में 'Science of Logic' तथा 'Phenomenology of Spirit' हीगल की महत्त्वपूर्ण रचनाएँ हैं।

## 5.5 हीगल के राजनीतिक विचारों के दार्शनिक आधार

**(Philosophical Basis of Hegel's Political Ideas)**

हीगल के राजनीतिक चिन्तन का दार्शनिक आधार उसके 'विश्वात्मा के विचार' में मिलता है। विश्वात्मा की अवधारणा एक आध्यात्मिक विचारा है। हीगल ने इतिहास को विश्वात्मा की अभिव्यक्ति माना है। हीगल इस संसार में दिखाई देने वाली सभी वस्तुओं का उद्‌भाव विश्वात्मा के रूप में देखता है। हीगल का दार्शनिक सूत्र है – "जो कुछ वास्तविक है, वह विवेकमय है और जो कुछ विवेकमय है व वास्तविक है।" (The real is rational and rational is real)।

उसने आत्मा को वास्तविक सत्य मानकर इसे शाश्वत तथा सर्ववयापी व अपने में ही पूर्ण सम्पूर्ण माना है। हीगल का विश्वास है कि इस संसार में कोई भी वस्तु स्थिर नहीं है। इस संसार में हर एक वस्तु गतिशील है। वह आत्मा को प्रज्ञा या निरपेक्ष भाव (Reason or Absoute Idea) की संज्ञा देता है। उसके अनुसार परिवर्तन नित्य विश्व प्रक्रिया का अंग है। निरपेक्ष इसके अधीन है। प्रज्ञा या आत्मा को अपनी सर्वोच्च अवस्था तक पहुँचाने के लिए अनेक सोपानों को पार करना पड़ता है। यह दृश्यमान भौतिक जगत् आत्मा का साकार रूप है। इसके महान् रचनात्मक शक्ति होती है जो विकास के लिए मचलती है और इस प्रकार नए रूप को ग्रहण कर लेती है। हीगल के अनसार विश्वात्मा के विकास का प्रारम्भिक रूप भौतिक अथवा जड़ जगत् है। मानव इसका उच्चतम रूप है। इस विकास – क्रम में मानव की स्थिति सर्वोपरि है क्योंकि इसमें चेतना आत्मा रहती है। हीगल का यह मानना है कि विश्वात्मा का विकास अवरूद्ध नहीं होता क्योंकि सम्पूर्ण विश्व अर्थात् प्रकृति की प्रत्येक वस्तु विकास – क्रम से बँधी हुई है तथा वह विश्वात्मा की ओर अग्रसर है। विश्वात्मा का बाह्य विकास विभिन्न संस्थाओं के रूप में होता है, जिनमें राज्य का सर्वोच्च स्थान है क्योंकि यह अन्य सभी संस्थाओं का नियामक व रक्षक है। इसलिए राज्य पृथ्वी पर विश्वात्मा का प्रकटीकरण है। नैतिकता तथा विधि निर्माण सब कुछ

राज्य के अन्तर्गत ही निहित है। राज्य का अपना व्यक्तित्व है और राज्य सबसे ऊपर है।

हीगल के अनुसार विश्वात्मा का विकास द्वन्द्वात्मक प्रक्रिया के द्वारा होता रहता है। यह विकास सीधी रेखाओं में न होकर टेढ़ी–मेढ़ी रेखाओं में होता है। इस प्रक्रिया का सूख त्रिमुखी है। इसमें पहले वाद, फिर प्रतिवाद तथा अन्त में संवाद आता है। जो प्रथम व दूसरे से श्रेष्ठ होता है। इन तीनों में परस्पर स्थानान्तरण होता रहता है। वाद में वास्तविकता का प्रकटीकरण होता है। प्रतिवाद में उसका विपरीत रूप होता है। संवाद में इन दोनों का संश्लेषण हो जाता है। कालान्तर में संवाद वाद बन जाता है और अपने प्रतिवाद को जन्म देता है। इन दोनों का विरोध या दोष संवाद में समाप्त हो जाते है। इस प्रक्रिया में परिवारवाद होता है। इसमें समाज को प्रतिवाद के रूप में बदलने के बीज निहित रहते हैं। जहाँ परिवार की विशेषता परस्पर प्रेम होती है, वहीं समाज की विशेषता सार्वभौमिक प्रतिस्पर्धा होती है। मनुष्य की आवश्कताओं को पूरा करने में परिवार के असफल रहने पर ही समाज का जन्म होता है और समाज के सर्वसत्ताधिकारवाद के कारण राज्य का जन्म होता है। राज्य संवाद के रूप में परिवार व समाज दोनों से श्रेष्ठ होता है। इस प्रकार द्वन्द्वात्मक विकास का अन्तिम चरण राज्य ही है। इस द्वन्द्वात्मक प्रक्रिया के अनुसार हीगल ने विश्वात्मा के विकास को तीन चरणों में विभाजित किया है। वह पहली स्थिति पूर्वी देशों की; दूसरी यूनानी तथा रोमन राज्यों की तथा तीसरी जर्मन राज्य के उत्थान की मानता है। वह घोषणा करता है कि जर्मनी शीघ्र ही एक विकसित राष्ट्र के रूप में उभकर समूचे यूरोप महाद्वीप का प्रतिनिधित्व करेगा।

हीगल का कहना है कि संसार के विकास का मार्ग पूर्व निर्धारित है। इस मार्ग को निर्धारित करने वाली शक्ति बुद्धि है। संसार की कोई भी वस्तु बुद्धि से परे नहीं है। इस विकास का अन्तिम लक्ष्य आत्मा द्वारा पूर्ण आत्मचेतना की प्राप्ति है। अपने अन्तिम लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए आत्मा अनेक रूप धारण करती है। जब मनुष्य द्वारा आत्मचेतना की प्राप्ति कर ली जाती है तो विकास की इस प्रक्रिया का अन्त

हो जाता है। विश्वात्मा ने जितने भी रूप धारण किए है और जितने भविष्य में धारण करेगी, उन सबमें मनुष्य ही सर्वोच्च है।

### हीगल की विश्वात्मा की विशेषताएँ

1. यह बहुनामी विचार है। इसे आत्मा, विवेक, दैवीय मानस आदि नामों से पुकारा जाता है।
2. इसके अनुसार मानव तथा जगत् दोनों ही विश्वात्मा के प्रकटीकरण है।
3. यह सब वस्तुओं को अपने में समेटने का गुण रखती है। सब वस्तुओं के उद्‌भव का स्त्रोत है।
4. इसमें परिवर्तनशीलता का गुण होता है। यह अपने अन्तिम लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए सदैव गतिशील रहती है।
5. इसका विकास द्वन्द्वात्मक प्रक्रिया के माध्यम से होता है। यह विकास – क्रम सीधा न होकर टेढ़ा – मेढ़ा होता है।
6. विश्वात्मा के विकास की अन्तिम परिणति राज्य के रूप में होती है। इसलिए राज्य पृथ्वी पर ईश्वर का अवतरण (March of God) है।

## 5.6 द्वन्द्वात्मक पद्धति (Dialectical Method)

हीगल का द्वन्द्ववाद का विचार उसके सभी महत्त्वपूर्ण विचारों में से एक महत्त्वपूर्ण विचार हे। यह विश्व इतिहास की यही व्याख्या करने का सबसे अधिक सही उपकरण है। हीगल ने इस उपकरण की सहायता से अपने दार्शनिक चिन्तन को एक नया रूप दिया है। इसी विचार के कारण हीगल को राजनीतिक चिन्तन में एक महत्त्वपूर्ण जगह मिली है। हीगल का द्वन्द्वावाद प्राथमिक महत्त्व का है। हीगल की प्रसिद्ध पुस्तक 'Science of Logic' में इसका विवरण मिलता है।

हीगल के अनुसार अन्तिम सत्य बुद्धि या विवेक है। इसलिए इसके विकास की प्रक्रिया को द्वन्द्ववाद का नाम दिया है। हीगल ने इस शब्द को यूनानी भाषा के 'डायलैक्टिक' जो कि 'डायलेगो' (Dialego) से निकला है, से इसका अर्थ लिया है। डायलेगो का अर्थ वाद – विवाद या तर्क – वितर्क करना होता है। इसका सर्वप्रथम

प्रयोग सुकरात ने किया था। सुकरात इस पद्धति का परम भक्त था। इस पद्धति का प्रयोग करके वह अपने विरोधियों द्वारा दिए गए तर्कों का विरोध करके तथा उनका समाधान करके अन्तिम सत्य तक पहुँचाने का प्रयास करता था। उस समय सत्य की खोज वाद – विवाद द्वारा ही की जाती थी। भारतीय दर्शन व यूनानी दर्शन में भी इस विधि का प्रयोग मिलता है। प्राचीन यूनानी विचारकों प्लेटो तथा अरस्तू के दर्शन में भी इस पद्धति का व्यापक प्रयोग मिलता है। हीगल तक यह पद्धति प्लेटो के माध्यम से पहुँची है। हीगल अपने द्वन्द्ववादी विचार के लिए प्लेटो के बहुत ऋणी हैं। उसने यूनानी दर्शन की त्रिमुखी प्रक्रिया को अपने दर्शन में प्रयोग किया है। यूनानी दार्शनिकों ने इस प्रक्रिया राजनीति में ही किया है। यूनानी विचारकों के अनुसार राजतन्त्र अपने प्रतिवाद के रूप में निरंकुश शासन में बदल जाता है। जब निरंकुशवाद अपने चरम शिखर पर पहुँच जाता है तो इस प्रतिवाद का नाश होकर लोकतन्त्र की स्थापना होती है। यूनानी विचारक द्वन्द्ववाद का तिहरी प्रक्रिया मानते थे। उसने अनुसार राजतन्त्र पहले कुलीनतन्त्र में और बाद में लोकतन्त्र में परिवर्तित हो जाता है। लोकतन्त्र पहले अधिनायकतन्त्र में तथा बाद में यह राजतन्त्र में बदल जाता है। यह प्रक्रिया अनवरत रूप से चलती रहती है।

हीगल ने इस त्रिमुखी प्रक्रिया में परिवर्तन करते हुए इसे राजनीतिक क्षेत्र की बजाय जीवन के सभी क्षेत्रों में लागू किया। उसने इस प्रक्रिया के तीन तत्त्व – वाद (Thesis), प्रतिवाद (Antithesis) और संवाद (Synthesis) बताए। उसका कहना था कि प्रत्येक विचार और घटना परस्पर दो विरोधी नितियों – वाद और प्रतिवाद के संघर्ष से उत्पन्न होती है। इन दोनों के सत्य तत्त्वों को ग्रहण करके एक नया रूप जन्म लेता है, जिसे संवाद कहा जाता है। यह वाद और प्रतिवाद दोनों से श्रेष्ठ होता है, क्योंकि इनमें दोनों के गुण अन्तर्निहित होते हैं। कालान्तर में यह वाद बन जाता है। वही त्रिमुखी प्रक्रिया फिर से दोहराई जाती है। इस प्रकार वाद, प्रतिवाद और संवाद की प्रक्रिया अनवरत रूप से चलती है। हीगल का कहना है कि यह निरन्तर आगे बढ़ने वाली प्रक्रिया है। यह सदैव विकास के उच्चतर स्तर की ओर बढ़ने वाली होती है। इस प्रकार हीगल ने द्वन्द्ववाद के यूनानी राजनीतिक सिद्धान्त को सार्वभौमिक रूप प्रदान कर दिया है। हीगल के अनुसार यह प्रक्रिया जीवन के सभी

क्षेत्रों में चलती रहती है। हीगल के अनुसार वाद किसी वस्तु का होना (Being) या अस्तित्व को स्पष्ट करता है। प्रतिवाद जो वह नहीं है (Non - being) को सिद्ध करता है। इस प्रकार वाद में ही प्रतिवाद के बीज निहित होते हैं। जब होना या अस्तित्व तथा न होना (Non - being) परस्पर मिलते है तो संवाद का जन्म होता है। इस तरह की प्रणाली संसार की सभी वस्तुओं व क्षेत्रों में मिलती है। इसी प्रणाली पर संसार का निरन्तर विकास हो रहा है।

हीगल का मानना है कि संसार के जड़ व चेतन सभी पदार्थों, सभी सामाजिक संस्थाओं, विचार के क्षेत्र में तथा अन्य सभी क्षेत्रों में इस प्रक्रिया को देखा जा सकता है। हीगल ने गेहूँ के दाने का उदाहरण देते हुए कहा कि दाना एक वाद है। उसको खेत में बोने से उसका अंकुरित होना प्रतिवाद है। पौधे के रूप में विकसित होने की तीसरी दशा संवाद है। यह प्रथम दोनों से उत्कृष्ट है। गेहूँ का एक दाना वाद है और संवाद में बीसियों दाने उत्पन्न हो गए। इसी तरह अण्डे में वीर्याणु वाद है। उसमें पाया जाने वाला रजकण प्रतिवाद है। वीर्य तथा रज के संयोग से जीव का जन्म होता है। यह अण्डे के भीतर प्राप्त करके पुष्ट होकर चूजे के रूप में अण्डे से बाहर आता है, यही संवाद है। इस प्रकार वीर्य (वाद) तथा राजकण (प्रतिवाद) दोनों ने मिलकर अधिक उत्कृष्ट रूप को जन्म दिया। यही बात मानव शिशु के बारे में भी कहीं जा सकती है। इसी प्रकार हीगल ने तर्क, प्रकृति और आत्मा के क्षेत्र में भी इस प्रक्रिया को लागू किया है। तर्क के क्षेत्र में जब हम इसको लागू करते हैं तो सर्वप्रथम वस्तुओं की सत्ता (Being) का ही बोध होता है; किन्तु आगे बढ़ने पर वस्तुओं के सार (Essence) का आभास हो जाता है। इसके बाद और आगे बढ़ने पर इसके बारे में और अधिक विचार (Notion) मिलते हैं। इसी प्रकार आत्मा के विकास की भी तीन दशाएँ – अन्तरात्मा (Subjective Spirit), ब्रह्मात्मा (Objective Spirit) तथा निरपेक्षात्मा (Absolute Spirit) हैं। जब प्रथम दशा से आत्मा दूसरे रूप में बाह्य जगत् के नियमों और संस्थाओं के रूप में व्यक्त होती है तो यह आत्मा का प्रतिवादी रूप है। अन्तरात्मा याद का अध्ययन मानवशास्त्र तथा मनोविज्ञान द्वारा किया जाता है। ब्रह्मात्मा (प्रतिवाद) का आचारशास्त्र, राजनीतिशास्त्र या विधि – शास्त्र द्वारा किया जाता है। आत्मा का तीसरा रूप (संवाद) का अध्ययन

कला, धर्म और दर्शन द्वारा किया जाता है। राज्य ब्रह्मात्मा के विकास की अन्तिम कड़ी है। इसमें आत्मा अपने मानसिक जगत् से निकलकर बाह्य जगत के विभिन्न नियमों तथा संस्थाओं के रूप में प्रकट होती हुई अन्त में राज्य के रूप में विकसित होती है। हीगल ने परिवार को एक वाद मानते हुए उसे समाज के रूप में विकसित करके राज्य के रूप में सर्वोच्च शिखर पर पहुँचा दिया है। हीगल के मतानुसार परिवार का आधार पारस्परिक प्रेम है। परिवार एक वाद के रूप में मनुष्य की सारी आवश्यकताएँ पूरी नहीं कर सकता। इसलिए प्रतिवाद के रूप में समाज की उत्पत्ति होती है। समाज प्रतिस्पर्धा तथा जीवन संघर्ष पर आधारित होता है। जीवन को अच्छा व सुखमय बनाने के लिए संवाद के रूप में राज्य का जन्म होता है। इसमें परिवार तथा समाज दोनों के गुण पाए जाते हैं। इसमें प्रेम तथा स्पर्धा दोनों के लिए उचित स्थान है। इस आधार पर हीगल जर्मन राष्ट्रवाद के पूर्णत्व को प्रमाणित करते हुए कहता है कि यूनानी राज्य वाद थे; धर्मराज्य उसके प्रतिवाद तथा राष्ट्रीय राज्य उनका संवाद होगा। इस प्रकार जर्मनी राष्ट्र को उसने विश्वात्मा का साकार रूप कहा है।

## द्वन्द्ववाद की विशेषताएँ (Features of Dialecticis)

हीगल के द्वन्द्ववाद की निम्नलिखित विशेषताएँ हैं :

1. **स्वतः प्रेरित :** द्वन्द्ववाद की प्रमुख विशेषता इसका स्वतः प्रेरित होते हुए निरन्तर अग्रसर रहना है। इसे आगे बढ़ने के लिए किसी दूसरी शक्ति से प्रेरणा ग्रहण करने की आवश्यकता नहीं है। यह विश्वात्मा में स्वयंमेव ही निहित है और इससे प्रेरणा लेती हुई आगे बढ़ती है। हीगल का कहना है कि आत्मा अपने आदर्शों को प्राप्त करने के लिए जब आगे बढ़ती है तो प्रतिवाद के रूप में उसे संघर्ष का सामना करना पड़ता है, जिसके परिणामस्वरूप संवाद की दशा पैदा होती है। इस प्रकार वाद में ही प्रतिवाद पैदा करने की शक्ति निहित होती है और इसी कारण से यह संघर्ष शाश्वत रूप से चलता रहता है। यह संघर्ष एक ऐतिहासिक आवश्यकता है, जिसके परिणामस्वरूप जर्मनी एक राष्ट्रवादी राज्य के रूप में उभरेगा।

2. **संघर्ष ही विकास का निर्धारक है :** हीगल का मानना है कि प्रगति या विकास दो परस्पर विरोधी वस्तुओं के संघर्ष या द्वन्द्व का परिणाम है। यह विकास टेढ़ी – मेढ़ी रेखाओं के माध्यम से होता है। हीगल ने कहा है – "मानव सभ्यता का विकास एक सीधी रेखा के रूप में न होकर टेढ़ी – मेढ़ी रेखा के रूप में होता है।"
3. **मानव का इतिहास प्रगति का इतिहास है :** हीगल का कहना है कि मानव की प्रगति संयोगवश या अचानक नहीं होती। इन प्रक्रिया को निश्चित करने वाला तत्त्व विश्वात्मा का विवेक है। यह विश्वात्मा अपने लक्ष्य की प्राप्ति के लिए अनेक रूप धारण करती है। इसका लक्ष्य आत्म–प्रकाशना है। यह उसे मनुष्य के रूप में प्राप्त होती है। इसके बाद कोई अन्य उच्चतम विकास नहीं होता।
4. **सत्य की खोज का तरीका :** हीगल का कहना है कि किसी वस्तु के वास्तविक स्वरूप का पता उसकी दूसरी वस्तु के साथ तुलना करके ही लगाया जा सकता है। इसलिए वास्तविक स्वरूप (सत्य) की खोज द्वन्द्ववाद द्वारा ही की जा सकती है।

इस प्रकार कहा जा सकता है कि इस ब्रह्माण्ड में एक सार्वभौमिक आत्मा का अस्तित्व है और यह सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड उसी का साकार रूप है। इस संसार में जो वास्तविक है, वह विवेकमय है और जो विवेकमय है वही वास्तविक है। प्रत्येक विचार में उसका सार निहित रहता है जो संसार की प्रत्येक वस्तू को गतिशील बनाए रखता है। इसी से मानव आत्मा अपने चरम लक्ष्य तक पहुँच जाती है।

**द्वन्द्ववाद की आलोचना (Criticisms of Dilectical Method)**

सत्य के अन्वेषण की प्रमुख पद्धति होने के बावजूद भी हीगल के द्वन्द्ववाद के अनेक आधारों पर आलोचना हुई है। उसकी आलोचना के प्रमुख आधार निम्नलिखित हैं :–

1. **अस्पष्टता :** हीगल ने अपने द्वन्द्ववाद में विचार, निरपेक्ष भाव, नागरिक समाज, पृथ्वी पर ईश्वर का आगमन आदि शब्दों का बड़ी अस्पष्टता के साथ प्रयोग किया है। हीगल ने धर्म, दर्शन, अर्थशास्त्र आदि में परिवर्तन का कारण 'विचार' में प्रगति को माना है। विज्ञान और दर्शन में जो भी नए – नए परिवर्तन होते

हैं, उनका कारण विचारों में विरोध ही नहीं हो सकता, अन्य कारण भी होते हैं। हीगल ने जिन अवधारणाओं के द्वन्द्ववाद में प्रयोग किया है, वे बड़ी अस्पष्ट हैं। उनके अनेक अर्थ निकलते हैं। उसका प्रत्येक वस्तु के मूल में छिपा अन्तविर्रोध का विचार भी स्पष्ट नहीं है। इसलिए कहा जा सकता है कि हिगल के द्वन्द्ववाद में अस्पष्टता का पुट है।

2. **वैज्ञानिकता का अभाव :** हीगल ने अपने द्वन्द्ववाद में किसी वस्तु को मनमाने ढंग से वाद और प्रतिवाद माना है। उसका कोई वैज्ञानिक आधार नहीं है। उसने कहा है कि कोई वस्तु एक ही समय में सत्य भी हो सकती है और असत्य भी। यह पद्धति वस्तुनिष्ठ न होकर आत्मनिष्ठ है क्योंकि इसमें इतिहास के तथ्यों को तोड़ – मरोड़ कर वाद, प्रतिवाद और संवाद के रूप में पेश किया गया है। यदि द्वन्द्ववाद वैज्ञानिकता पर आधारित होता तो हीगल के तर्कों के अलग – अलग अर्थ नहीं निकले होते। हीगल ने जहाँ राज्य को 'पृथ्वी पर ईश्वर का आगमन' कहा है, वहीं मार्क्स ने राज्य को शैतान की संज्ञा दी है। इसकी आधारभूत मान्यता भी गलत सिद्धान्त पर टिकी हुई है कि एक बात एक समय पर सत्य और असत्य दोनों हो सकती है। अतः हीगल के द्वन्द्ववाद में वैज्ञानिक परिशुद्धता का अभाव है।

3. **व्यक्ति की इच्छा की उपेक्षा :** हीगल ने कहा है कि ऐतिहासिक विकास की गति पूर्व निश्चित है। प्रो० लेकेस्टर ने कहा है – "हीगल के द्वन्द्ववादी सिद्धान्त में व्यक्तिगत इच्छाओं और वरीयताओं को महज एक सनक (Caprice) मान लिया गया है।" हीगल के अनसार – "मानव इतिहास के अभिनेता मनुष्य नहीं, बल्कि विशाल अवैयक्तिक शक्तियाँ (विचार) है।" यदि निष्पक्ष व तटस्थ दृष्टि से देखा जाए तो हीगल का यह सिद्धान्त इतिहास की पूर्ण व्याख्या प्रस्तुत नहीं करता। व्यक्ति की इच्छाएँ, अभिलाषाएँ व प्रयास इतिहास की गति बदलने की क्षमता रखते हैं। वैयक्तिक मूल्यों की उपेक्षा करके हीगल ने अपने आप को आलोचना का पात्र बना लिया है।

4. **मौलिकता का अभाव :** हीगल ने द्वन्द्ववादी सिद्धान्त को सुकरात तथा अन्य यूनानी चिन्तकों के दर्शन से ग्रहण किया है। उसने उसमें आमूल परिवर्तन

करके नया रूप अवश्य देने का प्रयास किया है, लेकिन यह उसका मौलिक विचार नहीं कहा जा सकता।

5. **अतार्किकता :** हीगल ने भविष्यवाणी की थी कि वाद, प्रतिवाद और संवाद की प्रक्रिया द्वारा जर्मनी एक शक्तिशाली राष्ट्र के रूप में पूर्णता को प्राप्त कर लेगा। तत्पश्चात् ऐतिहासिक विकास का मार्ग रूक जाएगा। लेकिन U.N.O. (संयुक्त राष्ट्र संघ) की स्थापना हीगल के तर्क को झूठा साबित कर देती है। सभी राष्ट्रों की आर्थिक निर्भरता में भी पहले की तुलना में अधिक वृद्धि हुई है। अतः उसकी भविष्यवाणी तार्किक दृष्टि से गलत है।
6. **अनुभव तत्त्व की उपेक्षा :** हीगल ने तर्क को सबसे ज्यादा महत्त्व दिया है। उसके अनुसार संसार के समस्त कार्यकलापों का आधार तर्क ही है। व्यक्तियों और राज्य के अतीत के अनुभव भी मानव इतिहास के विकास में महत्त्वपूर्ण योगदान देते हैं। इसलिए हीगल ने अनुभव तत्त्व की उपेक्षा करने की भारी भूल की है। जस्टिस होमज ने कहा है – "मनुष्य के सभी कार्यकलापों में अनुभव तर्क से अधिक महत्त्वपूर्ण है।"
7. **वस्तुनिष्ठा का अभाव :** हीगल का द्वन्द्ववाद ऐतिहासिक अर्न्दृष्टि, यथार्थवाद, नैतिक अपील, धार्मिक रहस्यवाद आदि का विचित्र मिश्रण है। व्यवहार में उसने वास्तविक, आवश्यक, आकस्मिक, स्थायी और अस्थायी आदि शब्दों का मनमाने ढंग से प्रयोग किया है। इसी कारण से उसका द्वन्द्ववाद वस्तुनिष्ठ नहीं है।
8. **अत्याधिक एकीकरण पर बल :** हीगल ने नैतिक निर्णय और ऐतिहासिक विकास के आकस्मिक नियमों को मिला दिया है। उसने बुद्धि और इच्छा को भी मिला दिया है। उसने कहा कि जर्मनी को राज्य अवश्य बनना चाहिए। इसका अभिप्राय यह है कि जर्मनी को ऐसा करना चाहिए क्योंकि उसक पीछे कारणात्मक शक्तियाँ काम कर रही है। इसलिए इस अनावश्यक व अत्यधिक एकीकरण के कारण उसका द्वन्द्ववाद तर्क की अपेक्षा नैतिक अपील पर ज्यादा जोर देता है।
9. विश्वनाथ वर्मा ने हीगल के द्वन्द्ववाद को रोमांसवादी कल्पना कहा है।
10. हीगल ने आकस्मिक और महत्त्वहीन में अन्तर नहीं किया है।

11. हीगल का द्वन्द्ववाद सफलता की आराधना करता है, विफलता की नहीं। इसलिए नीत्शे ने हीगल के द्वन्द्ववाद को 'सफलताओं की श्रंख्ला गौरवगान' कहा है।

उपर्युक्त आलोचनाओं के बाद यह नहीं कहा जा सकता कि हीगल का द्वन्द्ववाद पूर्णतया महत्त्वहीन है। हीगल के द्वन्द्ववाद का अपना विशेष महत्त्व है। इससे वस्तुओं के वास्तविक स्वरूप को समझने में मदद मिलती है। इससे मानव सभ्यता के विकास के बारे में पता चलता है। हीगल का ऐतिहासिक विकास में उतार – चढ़ाव की बात करना अधिक तर्कसंगत है। इस सिद्धान्त से मानव की बौद्धिक क्रियाओं के मनोविज्ञान को समझा जा सकता है। उसके द्वन्द्ववाद में सार्वभौमिकता का गुण होने के कारण इसे प्रत्येक क्षेत्र में लागू किया जा सकता है। हीगल ने दर्शन और विज्ञान की दूरी पाटने का प्रयास करके ज्ञान की विभिन्न शाखाओं में एकीकरण का प्रयास किया है। हीगल के द्वन्द्ववादी सिद्धान्त को मार्क्स ने उलटा करके अपना साम्यवादी दर्शन खड़ा किया है जिससे हीगल को अमरात्व प्राप्त हो गया है। इसलिए यही कहा जा सकता है कि अनेक गम्भीर त्रुटियों के बावजूद भी हीगल का द्वन्द्ववाद राजनीतिक चिन्तन के इतिहास में एक महत्त्वपूर्ण और अमूल्य देन है।

## 5.7 राज्य का सिद्धान्त (Theory of State)

हीगल के राज्य सम्बन्धी विचार सम्पूर्ण राजनीतिक चिन्तन में एक महत्त्वपूर्ण एवं मौलिक विचार हैं। उसके प्रमुख राज्य सम्बन्धी विचार 'फिनोमिनोलॉजी ऑफ स्पिरिट' तथा 'फिलोसॉफी ऑफ राइट' नामक ग्रन्थों में वर्णित हैं। हीगल ने जर्मन की तत्कालीन राजनीतिक दुर्दशा को देखकर अपने चिन्तन को खड़ा किया था ताकि जर्मनी का एकीकरण हो सके और जर्मनी एक शक्तिशाली राष्ट्र के रूप में उभर सके। इसी उद्देश्य को ध्यान में रखकर उसने राज्य का बहुत महत्त्व प्रदान किया है।

हीगल के अनुसार इस संसार में जो चीज वास्तविक है विवेकमय है, जो विवेकमय है, वास्तविक है। इसका तात्पर्य यह है कि वस्तु अस्तित्व में है वह तर्क के अनुकूल है और जो तर्क के अनुकूल है वह अस्तित्व में है। हीगल का मनाना है कि पूर्ण

विचार या तर्क का ज्ञान धीरे – धीरे तर्कसंगत शैली से ही हो सकता है। हीगल के अनुसार राज्य में पूर्ण विचार या दैवी आत्मा पूर्ण रूप से स्वतः सिद्ध अनुभूति को प्राप्त होता है। अर्थात् राज्य तर्क पर आधारित है। किसी वस्तु की सत्य प्रकृति का ज्ञान राज्य में ही सम्भव है। हीगल ने अरस्तू के आदर्श राज्य की वास्तविकता का खण्डन करते हुए कहा है कि सभी राज्य तर्कसंगत होते हैं, क्योंकि उनका विकास ऐतिहासिक क्रम में होता है। अर्थात् संसार की समस्त घटनाएँ एक पूर्व निश्चित योजना के अनुसार घटित होती है। इसके पीछे दैवी आत्मा या विश्वात्मा का हाथ होता है। इसलिए राज्य जैसी संस्था भी 'पृथ्वी पर भगवान का अवतरण' (March of God on Earth) है।

हीगल ने अपने लेख 'The German Consitution' में राज्य को परिभाषित करते हुए कहा है कि – "राज्य मानवों का एक ऐसा समुदाय है जो सामूहिक रूप से सम्पत्ति की रक्षा के लिए संगठित होता है। इसलिए सार्वजनिक सेना और सत्ता का निर्माण कर ही राज्य की स्थापना की जा सकती है।" यद्यपि हीगल ने शक्ति को राज्य का अनिवार्य तत्त्व माना है लेकिन राज्य अपने क्षेत्र में कानून के अनुसार कार्य करता है, शक्ति के द्वारा नहीं। उसके अनुसार राज्य किसी समझौते का परिणाम न होकर ऐतिहासिक विकास, सामुदायिक जीवन एवं परिवर्तित परिस्थितियों का परिणाम है। हीगल ने ग्रीक दर्शन से प्रभावित होकर अपनी पुस्तक में राज्य का व्यापक अर्थ में प्रयोग करते हुए राज्य को एक सर्वोच्च नैतिक समुदाय कहा है। उसके अनुसार – "राज्य मानव जीवन की सम्पूर्णता का प्रतीक है जिसमें परिवार, नागरिक समाज तथा राजनीतिक राज्य क्षणिक हैं। इसमें नैतिक शक्तियाँ ही व्यक्तियों के जीवन को अनुशासित रखती है।"

## राज्य की उत्पत्ति (Origin of the State)

हीगल के अनुसार राज्य किसी समझौते की उपज न होकर विश्वात्मा का द्वन्द्वात्मक पद्धति से होने वाले विकास का परिणाम है तथा इसका अपना व्यक्तित्व है। हीगल का कहना है कि संसार में सभी जड़ व चेतन पदार्थ विश्वात्मा से ही जन्म लेते हैं और उसी में ही विलीन हो जाते हैं। यह विश्वात्मा (आत्मतत्त्व) आत्मज्ञान के अपने

लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए विश्व में अनेक रूप धारण करती है। वह निर्जीव वस्तुओं, वनस्पतियों और पशुओं के माध्यम से गुजरती हुई मानव का रूप धारण करती है। मानव विश्वात्मा का श्रेष्ठ रूप है। इसके बाद इसका परिवार तथा समाज के रूप में प्रकटीकरण होता है जो राज्य पर जाकर रूक जाता है क्योंकि राज्य विश्वात्मा का पृथ्वी पर साक्षात् आवरण होता है।

## राज्य का विकास (Growth of the State)

हीगल का मानना है कि विश्वात्मा का द्वन्द्वात्क रूप से चरम लक्ष्य की ओर विकास होता है। विश्वात्मा बाह्य जगत् में विकास के अनेक स्तरों को पार करती हुई सामाजिक संस्थाओं के रूप में प्रकट होती है। ये संस्थाएँ परिवार, समाज व राज्य है। परिवार का उद्भव व्यक्ति की भौतिक आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए होता है। परिवार का आधार पारस्परिक प्रेम व सहिष्णुता है। परिवार राज्य की उत्पत्ति की प्रथम सीढ़ी है। परिवार व्यक्ति की सभी आवश्यकताओं को पूरा नहीं कर सकता। ज्यों – ज्यों परिवार में सदस्यों की संख्या बढ़ती है तो परिवार व्यक्ति की सभी आवश्यकताओं का भार सहन नहीं कर पाता है। अपनी बढ़ी हुई आवश्यकताओं को पूरा करने के उद्देश्य से व्यक्ति समाज की ओर अग्रसर होते हैं। इसे हीगल ने बुर्जुआ समाज या नागरिक समाज का नाम दिया है। समाज में पारस्परिक निर्भरता प्रतिस्पर्धा और स्वार्थ पर आधारित होती है। इसके कारण संघर्ष की स्थिति पैदा हो जाती है और पुलिस की शक्ति भी अस्तित्व में आ जाती है। इस संघर्ष की स्थिति पर नियन्त्रण करने तथा पारस्परिक प्रेम व सहयोग की भावना पैदा करने के लिए राज्य का जन्म होता है जो परिवार तथा नागरिक समाज दोनों का सम्मिलित रूप है। इस प्रकार हीगल ने परिवार को वाद, नागरिक समाज दोनों से उत्कृष्ट होता है। यह समाज में एकता व सामंजस्य की स्थापना करता है और उसे सामाजिक हितों के अनुकूल कार्य करने के लिए प्रेरित करता है।

## राज्य और नागरिक समाज में अन्तर

हीगल ने परिवार और राज्य में अन्तर स्वीकार किया है। उसके अन्तर के प्रमुख आधार निम्नलिखित है :

1. परिवार पारस्पारिक स्नेह और प्रेम की भावना पर आधारित होता है, नागरिक समाज समझौते और स्वार्थ के बँधनों से बँधा हुआ एक समूह है।
2. परिवार के सदस्यों में एकता की भावना होती है, नागरिक समाज के सदस्यों में घोर प्रतिस्पर्धा होती है।
3. परिवार कृषि – प्रधान आर्थिक व्यवस्था पर आधारित होता है, नागरिक समाज उद्योग – प्रधान आर्थिक व्यवस्था पर आधारित होता है।
4. परिवार एक आंगिक (Organic) व्यवस्था है, नागरिक समाज कृत्रिम और यान्त्रिक व्यवस्था है।
5. परिवार में विवादों का निपटारा करने के लिए किसी कानून की आवश्यकता नहीं पड़ती, नागरिक समाज में झगड़ों का निपटारा करने के लिए कानून की व्यवस्था करनी पड़ती है।
6. नागरिक समाज में किए गए कार्यों के बदले पारिश्रमिक मिलता है, परिवार में नहीं।
7. परिवार में धैर्य व सहिष्णुता की भावना पाई जाती है, नागरिक समाज में इसका अभाव होता है।

## हीगल के राज्य की विशेषताएँ (Features of Hegel's State)

हीगल के राज्य सम्बन्धी उपर्युक्त विचारों का व्यापक अध्ययन करने के पश्चात् उसके राज्य की निम्नलिखित विशेषताएँ उभरकर आती हैं :

1. **राज्य दैवी संस्था है (State is a Divine Institution) :** हीगल ने राज्य को विश्वात्मा का साकार रूप माना है। उसके अनुसार राज्य 'भगवान का पृथ्वी पर अवतरण' है। अनन्त युगों से असीम रूपों में विकसित होने वाली विश्वात्मा – भगवान का चरम रूप होने के कारण यह स्वतःसिद्ध और स्पष्ट है। ईश्वर

ने अपनी दैवी इच्छा को प्रकट करने के लिए राज्य को अपना साधन बनाया है। इसलिए यह पृथ्वी पर विद्यमान एक दैवीय विचार है।

2. **राज्य एक साध्य तथा एक समष्टि है (State is an End as well as Whole) :** हीगल का राज्य अपना उद्देश्य स्वयं ही है। राज्य का अस्तित्व व्यक्तियों के लिए नहीं है। व्यक्ति का अस्तित्व राज्य के लिए है। राज्य से परे नैतिक विकास असम्भव है क्योंकि राज्य से परे विश्वात्मा का आध्यात्मिक विकास उसी प्रकार सम्भव नहीं है, जिस प्रकार मनुष्य से आगे भौतिक विकास सम्भव नहीं है। राज्य पृथ्वी पर विश्वात्मा का अन्तिम रूप के कारण अपने आप में एक साध्य है। अपने आप में साध्य होने के कारण राज्य एक समष्टि है। हीगल ने अपने ग्रन्थ में कहा है कि "मनुष्य का सारा मूल्य और महत्त्व उसकी समूची आध्यात्मिक सत्ता केवल राज्य में ही सम्भव है।" इसका अर्थ यह है कि व्यक्ति राज्य का अंग होने के कारण ही नैतिक महत्त्व रखता है। राज्य के आदेशों का पालन करने में ही व्यक्ति की भलाई हे। इस प्रकार हीगल ने कहा है कि व्यक्ति का अस्तित्व राज्य में ही है, बाहर नहीं। उसने कहा है – "राज्य अपने आप में ही निरपेक्ष और निश्चित साध्य है।"

3. **सर्वोच्च नैतिकता का प्रतिनिधि (State Represents Highest Morality) :** राज्य सब प्रकार के नैतिक बन्धनों से मुक्त है। सर्वोच्च संस्था होने के नाते राज्य को नैतिकता का पाठ पढ़ाने की आवश्यकता नहीं पड़ती। यह स्वयं ही नैतिकता के सिद्धान्तों का सृजन करता है। यह अपने नागरिकों के लिए कानून का निर्माण करते समय उनके द्वारा पालन की जाने वाली नैतिकता के मानदण्डकों का भी निर्धारण करता है। कोई भी व्यक्ति अन्रात्मा या नैतिक कानून के आधार पर राज्य की आज्ञा का विरोध नहीं कर सकता। राज्य उन सभी परम्पराओं और प्रथाओं का सर्वोत्तम व्याख्याकार है जिनके आधार पर व्यक्ति की अन्तरात्मा उसे विवेकपूर्ण ढंग से कार्य करने के लिए प्रेरित करती है। राज्य ही यह बता सकता है कि उचित व अनुचित क्या है। इसलिए राज्य जो भी कार्य करता है, सही होता है। इसी आधार पर राज्य नैतिकता का सर्वोच्च मानदण्ड है।

4. **अन्तराष्ट्रीय सम्बन्धों में राष्ट्र राज्य की सर्वोच्चता (Supremacy of Nation – State in International Relations) :** हीगल का राज्य अन्तराष्ट्रीय नैतिकता व कानून से ऊपर है। हीगल का कहना है कि अन्तरराष्ट्रीय सम्बन्धों में स्वार्थ – सिद्धि का उद्देश्य राज्य का प्रमुख उद्देश्य होता है। इस उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए राज्य सब प्रकार के बन्धनों से मुक्त है। वह आत्मरक्षा के लिए अन्य राज्यों के साथ कैसा व्यवहार कर सकता है। राज्य अपने हितों को पूरा करने के लिए सन्धियों व समझौतों का भी उल्लंघन कर सकता है। हीगल का कहना है कि राज्य अन्तराष्ट्रीय कानून व सन्धियों का पालन उसी सीमा तक करते हैं जहाँ तक उनके हितों का पोषण होता है। अन्त में यही कहा जा सकता है कि हीगल का राज्य प्रभुसत्ता सम्पन्न है।

5. **व्यक्ति की स्वतन्त्रता में वृद्धि का साधन है (State is a Means to Promote the Freedom of Man) :** हीगल का कहना है कि राज्य मनुष्य की स्वतन्त्रता को विकसित करने और बढ़ाने का साधन है। व्यक्ति केवल राज्य में रहकर ही पूर्ण स्वतन्त्रता का उपभोग कर सकता है। व्यक्ति राज्य में ही अपने बाहरी अहम् को अपने आन्तरिक अहम् के स्तर तक उन्नत कर सकता है। हीगल का कहना है कि सच्ची स्वतन्त्रता राज्य के कानूनों का पालन करने में है। इसके द्वारा व्यक्ति समाज के हितों के साथ सामंजस्य स्थापित करके अपने व्यक्तित्व का पूर्ण विकास कर सकता है। हीगल का कहना है कि राज्य व्यक्ति की वास्तविक स्वतन्त्रता को प्राप्त करने का प्रमुख साधन है। व्यक्ति की सच्ची स्वतन्त्रता राज्य के आदेशों का पालन करने में है, विरोध करने में नहीं।

6. **राज्य और व्यक्ति में विरोध नहीं (No contradictions Between State and Man) :** हीगल के अनुसार राज्य और व्यक्ति के हित एक है। राज्य वर्तमान चेतना के रूप में एक दैवी इच्छा है जो संगठित संसार के रूप में अपना उद्‌घाटन करती है। राज्य रक्त सम्बन्ध या भौतिक स्वार्थ पर आधारित संस्था न होकर विवेक पर आधारित एक संस्था है।

7. **राज्य पूर्ण विवेक की अभिव्यक्ति है :** हीगल के अनुसार राज्य आत्म – चेतना की शाश्वत व आवश्यक सत्ता है। राज्य वर्तमान चेतना के रूप में एक दैवी इच्छा है जो संगठित संसार के रूप में अपना उद्‌घाटन करती है। राज्य रक्त सम्बन्ध या भौतिक स्वार्थ पर आधारित संस्था न होकर विवेक पर आधारित एक संस्था है।

8. **पैतृक एवं संवैधानिक राजतन्त्र का समर्थन (Favours Hereditary and Constitutional Monarchy) :** हीगल के अनुसार राज्य की सम्प्रभुता राजा में निहित है, जनता में नही। लेकिन सम्प्रभु कानून के दायरे में काम करने वाला होना चाहिए। इसके लिए प्रत्येक राज्य का अपना संविधान होना चाहिए। हीगल का मानना है कि राजा समुदाय की इच्छा का सामूहिक प्रतिनिधि होता है। यह राज्य की एकता का प्रतीक होता है। उसे विधायिका और कार्यपालिका के विषयों में निर्णय देने का अधिकार होता है। राजा ही संविधान और राज्य के व्यक्तित्व को साकार रूप प्रदान करता है। हीगल ने कहा है कि राजा को कई विशेषाधिकार प्राप्त नहीं हो सकता। उसकी जो भी स्थिति है, वह वैधानिक स्थिति के कारण ही हो सकती है। इस प्रकार हीगल ने वैधानिक राजतन्त्र का समर्थन करके राजा की निरंकुशता के अस्वीकार किया है। वह केवल संवैधानिक राजतन्त्र का ही समर्थन करता है।

9. **युद्ध का पक्षधर (Supporter of War) :** हीगल का मानना है कि युद्ध मानना है कि मानव के सर्वोत्तम गुणों को प्रकट करते हैं। इनके व्यक्तियों में एकता की भावना पैदा होती है उनका नैतिक विकास होता है। युद्ध विश्व इतिहास का निर्माण करते हैं। ये गह – युद्ध को रोकते हैं और आन्तरिक शक्ति में वृद्धि करते हैं। इससे नागरिकों में देश–प्रेम की भावना का संचार होता है। हीगल का मानना है कि स्थायी शांति का विचार जनता को पथभ्रष्ट करता है। हीगल का यह भी मानना है कि आत्मा अपने उद्देश्य की पूर्ति राष्ट्रों में युद्ध के द्वारा ही करती है। इसलिए उसने कहा है कि – "विश्व – इतिहास, विश्व का न्यायालय है।" युद्ध में ही विश्वात्मा का सच्चा रूप प्रकट होता है।

10. राज्य परम्पराओं व प्रथाओं का अन्तिम व्याख्याकार है।

11. राज्य का आदेश व कार्य कभी गलत नहीं होता।
12. राज्य का अपना स्वतन्त्र अस्तित्व होता है।

इस प्रकार कहा जा सकता है कि हीगल दार्शनिकों की तरह राज्य को सर्वश्रेष्ठ संस्था माना है, जिसका अपना व्यक्तित्व है। हीगल का राज्य साध्य है, साधन नहीं। सभी व्यक्ति राज्य रूपी समष्टि के अंग है। उनका अपना कोई स्वतन्त्र अस्तित्व नहीं है। उनके अधिकार व स्वतन्त्रताएँ राज्य में ही निहित हैं। राज्य विश्वात्मा की सर्वोत्तम इच्छा प्रकटीकरण होने के कारण सर्वश्रेष्ठ आध्यात्मिक निकाय है। इसलिए हीगल ने राज्य को पृथ्वी पर ईश्वर का अवतरण कहकर नास्तिकवाद पर करारा प्रहार किया है। वह निरंकुश शासकों के लिए एक नए मार्ग को प्रशस्त करता है।

**आलोचनाएँ (Criticisms)**

यद्यपि हीगल ने राज्य के सम्बन्ध में अपने कुछ महत्त्वपूर्ण विचार प्रस्तुत किए हैं, लेकिन फिर भी उसके राज्य सम्बन्धी विचारों की आलोचना हुई है। उसकी आलोचना के प्रमुख आधार निम्नलिखित हैं :–

1. आलोचकों का मानना है कि राज्य की उत्पत्ति परिवार और नागरिक समाज के मध्य संघर्ष से होना उचित नहीं है। परिवार और नागरिक समाज में संघर्ष या तनाव जैसी कोई स्थिति नहीं होती। प्लामेनाज ने हीगल के इस सिद्धान्त को गलत ठहराया है। उसका कहना है कि परिवार और नागरिक समाज में ऐसा कोई संघर्ष नहीं होता जिसके निराकरण के लिए राज्य की आवश्यकता पड़े।
2. हीगल की सम्प्रभुता की धारणा अस्पष्ट है। हीगल इस बात को स्पष्ट नहीं करता कि सम्प्रभु के क्या अधिकार हैं ? एक तथ्य तो यह कहता है कि राजा का कार्य नीति निर्धारण करना है, परन्तु दूसरी तरफ वह यह भी कहता है कि राजा किसी कानून पर केवल अपनी सहमति ही प्रकट करता है, कानून का निर्माण नहीं करता। अतः यह धारणा अस्पष्ट है।
3. हीगल का राज्य को व्यक्तित्व प्रदान करने का सिद्धान्त गलत है। मैकाइवर ने कहा है कि – "जिस तरह एक वृक्षों का समूह एक वृक्ष नहीं माना जा सकता, उसी प्रकार व्यक्तियों के समूह को एक व्यक्ति नहीं माना जा सकता।"

4. हीगल का राज्य का सिद्धान्त अराजकता को बढ़ावा देने वाला है। उसने राज्य को सभी नैतिक बन्धनों से मुक्त कर दिया है। उसने राज्य को अन्तर्राष्ट्रीय कानून व सन्धियों का उल्लंघन करने का अधिकार देकर विश्व शान्ति के लिए खतरा पैदा कर दिया है।
5. स्वतन्त्रता को कानून के साथ मिलना न्यायसंगत नहीं है।
6. यह अन्तरराष्ट्रीय का विरोधी है। यह केवल राष्ट्र–राज्य की धारणा का ही पोषक है।
7. हीगल सर्वसत्ताधिकारवादी राज्य का समर्थन करता है। उसने जन – सम्प्रभुसत्ता को अस्वीकार करके जनमत की उपेक्षा की है। उसने जातीयता, राष्ट्रवाद, शक्ति और युद्ध का समर्थन करके राज्य की वेदी पर व्यक्ति का बलिदान कर दिया है।

इस प्रकार हीगल के राज्य सम्बन्धी विचारों की अनेक आलोचनाएँ हुई हैं, लेकिन उसके सिद्धान्त का महत्त्व कम नहीं आंका जाना चाहिए। उसका प्रगति का विचार एक महत्त्वपूर्ण विचार है। उसने राज्य को व्यक्ति के विकास का महत्त्वपूर्ण उपकरण मान लिया है। उसने राजनीति और नैतिकता में मधुर सम्बन्ध स्थापित किया है। उसने संविधानवाद का समर्थन किया है। उसका यह सिद्धान्त शासन की निरंकुशता का पूरा विरोध करता है। इसलिए उसके संवैधानिक राजतन्त्र का ही समर्थन किया है। अन्त में यही कहा जा सकता है कि उसके राज्य सम्बन्धी विचार राजनीतिक चिन्तन को एक महत्त्वपूर्ण व अमूल्य देन हैं।

## 5.8 सम्प्रभुता और शासन पर विचार (Views on Sovereignty and Government)

अपनी शासन पद्धति में हीगल ने राजा को विशेष स्थान प्रदान किया है। उसके अनुसार राज्य की व्यवस्थापिका और कार्यपालिका शक्तियाँ राजा के माध्यम से ही सामंजस्यपूर्ण तरीके से एक हो जाती है। राजा ही राज्य की एकता और सर्वोच्च सत्ता का प्रतीक होता है। इसलिए राज्य की सम्प्रभुता जनता में न होकर राजा में होती है। वही राज्य की इच्छा का निर्धारण करता है। हीगल के अनुसार राज्य की आन्तरिक सम्प्रभुता का सार समग्र की प्रधानता में और विभिन्न सत्ताओं की राज्य

की एकता पर निर्भरता और अधीनता में ही निहित है। उसका कहना है कि राजा के अभाव में एकता की स्थापना करना असम्भव है। राजा राज्य की एकता का मूर्तिमान रूप होता है। लेकिन राजा को भी संविधान के नियमों का पालन करना पड़ता है। इसलिए हीगल का शासक निरंकुश न होकर संविधान द्वारा मर्यादित है। हीगल का विश्वास है कि – "सम्प्रभूता वैधानिक व्यक्तित्व में ही निवास करती है, न की जनता या नागरिकों के समूह में। इस वैधानिक व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति एक व्यक्ति के रूप में होनी चाहिए और वह व्यक्ति राजा ही हो सकता है।" इससे स्पष्ट होता है कि हीगल वैधानिक राजा को ही सम्प्रभु मानता है।

हीगल ने शासन व्यवस्था पर विचार करते हुए राज्य के लिए संविधान का होना अति आवश्यक मानकर उसके अन्तर्गत तीन सत्ताओं – विधायिका, कार्यपालिका और राजा का वर्णन किया है। इन तीनों सत्ताओं के पृथक्करण के आधार पर ही हीगल ने संवैधानिक राजा की सम्प्रभूता का औचित्य सिद्ध किया है। उसके अनुसार विधायिका का कार्य सार्वजनिक इच्छा का निर्धारण करना है। कार्यपालिका का कार्य सार्वजनिक इच्छा के अनुकूल विशेष समस्याओं का समाधान करना है और सम्राट में अन्तिम रूप से निर्णय लेने की शक्ति होती है। उसके अनुसार विधायिका के दो सदन होते हैं। उच्च सदन (अभिजात सदन) निम्न सदन। अभिजात सदन की सदस्यता वंशानुगत और ज्येष्ठता के सिद्धान्त पर आधारित होती है। प्रतिनिधि या निम्न सदन नागरिक समाज के शेष नागरिकों से बनता है जो प्रतिनिधि निगमों, गिल्डो, समुदायों आदि द्वारा अपने लिए निर्धारित संख्या के हिसाब से चुने जाते हैं। इस तरह उच्च सदन जमींदारों का तथा निम्न सदन कृषक वर्ग का प्रतिनिधित्व करता है। हीगल के अनुसार विधायिका का प्रमुख कार्य केवल मंत्रियों को सलाह देना और सामान्य नियमों का निर्माण करना है, कानून का निर्माण करना नहीं। उसका विश्वास है कि इसके पास कानून की रचना करने की योग्यता नहीं होती।

कार्यपालक सत्ता को हीगल ने विशेष क्षेत्रों और अलग – अलग मामलों को एक सामान्य सूत्र में बाँधने वाली शक्ति माना है। इसके अन्तर्गत उच्च प्रशासनिक पदाधिकारी, अधीनस्थ अधिकारी और न्यायिक पदाधिकारी आते हैं। इसका कार्य नीति – निर्माण करना न होकर नीति को लागू करना होता है। नीति – निर्माण

करना तो राजा का कार्य है। हीगल के अनुसार कार्यपालिका का कार्य सम्राट के निर्णयों को क्रियान्वित करना, प्रचलित कानूनों पर अमल करवाना और विद्यमान संस्थाओं को बनाए रखना है। कार्यपालक सत्ता राजकर्मचारियों का ऐसा समुदाय होती है जो राज्य का मुख्य अवलम्ब होती है। इसके महत्त्व पर प्रकाश डालते हुए हीगल ने कहा है– "राज्य के संगठन और आवश्यकताओं को समझने के लिए उच्चतम सरकारी कर्मचारियों में अधिक गम्भीर और व्यापक दृष्टि होती है।" यह कर्मचारी वर्ग (कार्यपालिका) विधानपालिका की सहायता के बिना भी सर्वोत्तम शासन कर सकता है। इसी आधार पर हीगल ने इसे शासन का सर्वश्रेष्ठ अंग माना है। उसके कार्य में विधानपालिका महत्त्वपूर्ण योगदान देती है। यदि कार्यपालिका की दृष्टि से समाज की कोई इच्छा चूक जाती है तो विधानपालिका उसे कार्यपालिका के सामने लाती है। यह शासन प्रबन्ध की आलोचना से भी कार्यपालिका को अवगत कराती है। इस तरह कार्यपालिका को महत्त्वपूर्ण संस्था बनाने में विधानपालिका का ही हाथ होता है।

शासन की तीसरी सत्ता राजा होता है। शासन का कार्य सामान्य रूप से तो विधानपालिका तथा कार्यपालिका ही करती है, लेकिन संकट के विभिन्न अवसरों पर राजा ही महत्त्वपूर्ण निर्णय करता है। राजा ही कार्यपालिका और विधानपालिका में तालमेल स्थापित करता है। राजा को संविधान की मार्यादाओं का पालन करना पड़ता है। इसलिए वह निरंकुश न होकर जनभावनाओं के अनुरूप ही कार्य करता है। राजा शक्ति का प्रतिक है, प्रयोगकर्ता नहीं। मंत्रीमण्डल उसके प्रति उत्तरदायी तो है, लेकिन राजा को कोई विशेषाधिकार प्राप्त नहीं है। सेबाइन का कहना है – "हीगल का राजा कोई विशेष शक्ति प्राप्त व्यक्ति नहीं है। उसे राज्य के अध्यक्ष की अपनी शक्ति वैधानिक स्थिति के कारण ही प्राप्त है।" हीगल ने वंशागुत राजतन्त्र का ही समर्थन किया है क्योंकि वह उसे प्राकृतिक मानता है। इस तरह राजा शासन की महत्त्वपूर्ण शक्ति का परिचायक है।

### शासन के प्रकार

हीगल ने शासन के तीन प्रकार माने हैं :–

(i) निरंकुश शासन (Despotism)

(ii) लोकतन्त्र तथा कुलीनतन्त्र (Democracy and Aristocracy)

(iii) राजतन्त्र (Monarchy)

हीगल ने अपने द्वन्द्ववादी विकास के सिद्धान्त के आधार पर भारत चीन, मिस्त्र आदि देशों की शासन व्यवस्थाओं को निरंकुश कहा है। यूनानी नगर राज्यों को उसने लोकतन्त्र तथा कुलीनतन्त्र के अन्तर्गत रखा है। उसने जर्मनी की शासन व्यवस्था (राजतन्त्र) को तीसरी अवस्था मानकर इसे सर्वश्रेष्ठ शासन प्रणाली कहा है। उसने निरंकुशतन्त्र को वाद, लोकतन्त्र और कुलीनतन्त्र को उसका प्रतिवाद मानकर ऐतिहासिक विकास – क्रम में वैधानिक राजतन्त्र को शासन की सर्वश्रेष्ठ प्रणाली कहा है क्योंकि इसमें विश्वात्मा के चरम लक्ष्य के दर्शन होते हैं। इस प्रकार हीगल ने शासन प्रणालियों के वर्गीकरण को द्वन्द्ववादी आधार प्रदान करके संवैधानिक राजतन्त्र को शासन का उत्कृष्ट रूप कहा है।

इस प्रकार हीगल के सम्प्रभुता तथा शासन सम्बन्धी विचारों के निष्कर्ष के तौर पर कहा जा सकता है कि हीगल सर्वसाधारण की शासन करने की क्षमता में विश्वास नहीं करता। वह इसी आधार पर व्यस्क मताधिकार का विरोध करता है। वह विधानमण्डल में बहसों की गोपनियता, प्रेस की स्वतन्त्रता और सूचना स्वतन्त्रता का समर्थन करके संविधानवाद में अपना विश्वास व्यक्त करता है। वह राजा को विधानमण्डल तथा कार्यपालिका के मध्य समन्वय स्थापित करने वाली कड़ी मानता है। वह निरंकुश राजतन्त्र के स्थान पर संवैधानिक राजतन्त्र का सिद्धान्त प्रतिष्ठित करता है।

## 5.9 इतिहास का सिद्धान्त (Theory of History)

हीगल ने इतिहास की दार्शनिक व्याख्या करते हुए उसे बिखरी हुई असम्बद्ध घटनाओं का विकास न मानकर उसे सप्राण विकास माना है। उसका मानना है कि इतिहास की सभी महत्त्वपूर्ण घटनाएँ या कारण निर्वैयक्तिक होते हैं और सामान्य

शक्तियों के रूप में होते हैं। ये सामान्य शक्तियाँ विश्वात्मा के उद्देश्यों के अनुकूल ही कार्य करती हैं। उसके अनुसार विश्व इतिहास के विकास की सम्पूर्ण गति पूर्व निश्चित है। उसका मानना है कि विश्वात्मा (पूर्ण विचार, धीमी विकासशील प्रक्रिया से आगे बढ़ती है। विश्वात्मा की विकासशील प्रक्रिया में संयोग या आकस्मिक घटनाओं का कोई स्थान नहीं होता। सम्पूर्ण ऐतिहासिक विकास एक युक्तिपूर्ण योजना के अनुसार ही होता है। जब विश्वात्मा अपने पूर्व निश्चित ध्येय को प्राप्त करने के लिए आगे बढ़ती है तो उसे अनेक अन्तर्विरोधों का सामना करना पड़ता है। इसलिए विश्वात्मा (पूर्ण विचार) को अनेक रूप धारण करने पड़ते हैं। वह अपने मूल रूप को त्यागकर प्रतिदिन नए रूप ग्रहण करती रहती है। उसका प्रत्येक रूप ऐतिहासिक विकास की एक यात्रा के समान होता है। उसे अपने अन्तिम रूप तक पहुँचने के लिए अनेक यात्राएँ करनी पड़ती हैं।

विश्वात्मा के विकास की प्रथम अवस्था भौतिक अथवा निर्जीव संसार है। हम इसे अपने ज्ञानेन्द्रिय ज्ञान से ही जान सकते है। इसके बाद सजीव संसार का स्थान है। यह अवस्था अधिक जटिल होती है। तीसरी अवस्था पृथ्वी पर मनुष्य का विकास है। यह प्रथम व द्वितीय अवस्थाओं से अधिक जटिल है क्योंकि इसमें शक्ति तत्त्व का समावेश हो जाता है। अगली अवस्था में परिवार का विकास होता है। इसके बाद नागरिक समाज की अवस्था है। विकास की अन्तिम अवस्था राज्य के विकास की है। इस मंजिल पर पहुँचकर ही विश्वात्मा या पूर्ण विचार का आत्म – साक्षात्कार होता है। इस तरह पूर्ण ऐतिहासिक विकास का आरम्भ और अन्त राज्य में ही होता ह। आत्म–साक्षात्कार की इस अवस्था में ही विश्वात्मा अपने चरम लक्ष्य तक पहुँच जाती है।

हीगल ने अपनी 'Philosophy of History' पुस्तक में विश्वात्मा के विकास की स्थितियों पर प्रकाश डालते हुए कहा है कि प्रथम स्थिति पूर्वी देशों – चीन, भारत, ईरान, मिस्त्र आदि देशों की है। इन देशों में विश्वात्मा शैशवरूप में थी। उसका कहना हे कि चीन में समूचा मानव जीवन एक ही व्यक्ति द्वारा नियन्त्रित होता था और वहाँ स्वतन्त्रता का अभाव था। इसके बाद विश्वात्मा भारत की ओर उन्मुख

होकर आगे बढ़ी। इसके बाद विश्वात्मा ने यूनान और रोम में प्रवेश किया। यूनान की कला, धर्म, दर्शन तथा रोम के कानून में इसकी अभिव्यक्ति हुई। इस अवस्था में जनता ने स्वतन्त्रता प्राप्ति के लिए राजाओं से संघर्ष किया परन्तु उन्हें पूर्ण सफलता नहीं मिल सकी। हीगल का विश्वास है कि विश्वात्मा के रूप में मानव जाति का पूर्ण विकास जर्मनी में होगा। यह विश्वात्मा के विकास की चरम अवस्था होगी। जर्मनी का राष्ट्र – राज्य के रूप में विकास सार्वदेशिक विश्वात्मा का प्रतिनिधितत्व करेगा।

इस प्रकार कहा जा सकता है कि हीगल का इतिहास का सिद्धान्त उसके विश्वात्मा के दार्शनिक सिद्धान्त पर आधारित है। उसका इतिहास का सिद्धान्त विश्वात्मा के कार्यकलापों के आलेख के सिवाय कुछ नहीं है जो संसार के भिन्न – भिन्न राष्ट्रों या जातियों से होकर राष्ट्र–राज्य के रूप में प्रकट होती है। उसका राष्ट्र–राज्य ही कला, कानून, नैतिकता तथा धर्म का सच्चा स्रष्टा है। मानव सभ्यता का इतिहास राष्ट्रीय संस्कृतियों का एक अनुक्रम है जिसमें प्रत्येक राष्ट्र सम्पूर्ण मानव उपलब्धियों के लिए अपना विशेष योगदान देता है।

## 5.10 स्वतन्त्रता का सिद्धान्त (Theory of Freedom)

हीगल का स्वतन्त्रता सम्बन्धी सिद्धान्त राजनीतिक चिन्तन के इतिहास में उसका एक महत्त्वपूर्ण योगदान है। हीगल से पहले भी अनेक विचारकों ने स्वतन्त्रता पर अपने विचार प्रकट किए। लेकिन उन सभी का दृष्टिकोण आत्मपरक (व्यक्तिवादी) ही रहा। हीगल ने इसे व्यापक आधार प्रदान किया है। हीगल के अनुसार – "स्वतनत्रता व्यक्ति का एक विशेष गुण है। इसको छोड़ने का अर्थ है मानवता का परित्याग करना। अतः स्वतन्त्र न होना मनुष्य द्वारा अपने मानवीय अधिकारों और कर्त्तव्यों का परित्याग करना है।" उसने फ्रेंच क्रान्ति द्वारा प्रतिपादित किए गए स्वतन्त्रता सम्बन्धी मिथ्या व भ्रान्त धारणाओं का खण्डन किया है। स्वतन्त्रता के व्यकितवादी विचारकों के अनुसार स्वतन्त्रता घूमने –फिरने, विचार प्रकट करने तथा अपने धर्म का पालन करने, इच्छानुसार जीवन व्यतीत करते में है। लेकिन हीगल ने स्वतन्त्रता अपनी इच्छानुसार कार्य में न होकर राज्य की इच्छानुसार पालन करने में

बताई है। हीगल का विचार है कि निरंकुश होकर व्यक्ति की स्वतन्त्रता को तो कुचल सकता है लेकिन व्यक्ति राज्य की इच्छा को कुचल नहीं सकता। इसलिए सच्ची स्वतन्त्रता राज्य के आदेशों का आँख बन्द करके पालन करने में है।

## स्वतन्त्रता का विकास

हीगल का मानना है कि विश्वात्मा के क्रमिक की तरह स्वतन्त्रता का भी विकास हुआ है। विश्वात्मा के प्राच्य युग में केवल निरंकुश व्यक्ति ही स्वतन्त्र था। यूनान और रोम में कुछ ही व्यक्ति स्वतन्त्र थे क्योंकि वहाँ दास – प्रथा थी। हीगल के अनुसार नवोदित राष्ट्र जर्मनी में मानव – स्वतन्त्रता का उदय हुआ है जहाँ सभी व्यक्ति होने के नाते स्वतन्त्र है। लेकिन जर्मनी में भी पूर्ण स्वतन्त्रता नहीं है, क्योंकि वहाँ विश्वात्मा का पूर्ण विकास नहीं हुआ है। जब जर्मन राष्ट्र राज्य के रूप में विश्व मानचित्र पर उभरेगा तो वह पूर्ण स्वतन्त्रता की स्थिति होगी। मानव का अन्तिम लक्ष्य सुख की प्राप्ति न होकर स्वतन्त्रता की प्राप्ति करना है। हीगल का कहना है कि – "विश्व का इतिहास स्वतन्त्रता की चेतना की प्रगति के सिवाय और कुछ नहीं है।" आज तक विश्व में जितने भी युद्ध हुए हैं, उनके पीछे स्वतन्त्रता का विचार प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप में अवश्य छिपा हुआ है।

## दार्शनिक आधार (Philosophical Basis)

हीगल ने अपने स्वतन्त्रता सम्बन्धी विचारों को दार्शनिक आधार पर औचित्यपूर्ण माना है। उसके अनुसार स्वतन्त्रता आत्मा का सार है। उसका मानना है कि स्वतन्त्रता का अर्थ अपने आप में पूर्ण होना, दूसरे पर किसी प्रकार से निर्भर न रहना है। यह विशेषता आत्मा में है? जड़ पदार्थों में नहीं। जड़ पदार्थों में आत्मनिष्ठा का गुण नहीं पाया जाता है। संसार की सभी जड़ वस्तुएँ गुरूत्वाकर्षण के नियम के अनुसार शासित होती हैं। उनकी प्रवृति सदा अपने स्वरूप से बाहर अवस्थित गुरूत्वाकर्षण केन्द्र की ओर जाने की होती है। अतः वे स्वतन्त्र नहीं हो सकती। दसरी तरफ आत्मा अपने स्वरूप से बाहर नहीं जाती। इसलिए आत्मा का विकास स्वतन्त्रता का विकास है और मानव जाति के विकास का इतिहास

स्वतन्त्रता के विकास का सूचक है। मानव इतिहास का उच्चतम विकास राज्य के रूप में होता है। इसमें विश्वात्मा अपना अन्तिम साकार रूप ग्रहण करती है। अतः ऐसा राज्य ही पूर्ण स्वतन्त्र राज्य है। विश्वात्मा के चरम रूप के कारण राज्य व्यक्तियों की स्वार्थमयी व संकीर्ण भावनाओं से ऊपर उठा हुआ होता है। हीगल का कहना है कि स्वतन्त्रता का अभिप्राय वैयक्तिक इच्छा के अनुसार कार्य करना न होकर राज्य की इच्छा के अनुसार कार्य करना है। इससे व्यक्ति अपनी वासनाओं और इच्छाओं की दासता से मुक्ति पाता है और सच्ची स्वतन्त्रता का उपभोग करता है।

## कानून और स्वतन्त्रता में विरोध नहीं है

हीगल का मानना हे कि कानून स्वतन्त्रता का ही मूर्त रूप है। राज्य का कोई भी कानून व्यक्ति अपनी ही इच्छा का परिणाम है क्योंकि व्यक्ति भी विश्वात्मा का साकर रूप है, यद्यपि उसमें उतनी पूर्णता नहीं है, जितनी राज्य में पाई जाती है। फिर भी वह राज्य का अभिन्न अंग है। लेकिन वह स्वार्थमयी प्रवृति के कारण सामाजिक हित के विपरीत कार्य कर सकता है। उस समय उसका कार्य विश्वात्मा के प्रतिकूल होता है, इसलिए उस पर कानून का अंकुश लगाना आवश्यकता होता है। कानुन उसकी भलाई ही करता है। वह उसे सच्ची स्वतन्त्रता की ओर उन्मुख करता है। यदि वह कानून का पालन दण्ड के भय से करता है तो उसे स्वतन्त्र नहीं कहा जा सकता। यदि वह अपनी इच्छा से कानून का पालन करता है तो वह विश्वात्मा की इच्छा के अनुसार कार्य करके सच्ची स्वतन्त्रता को प्राप्त कर रहा होता है। अतः कानून और स्वतन्त्रता में विरोध नहीं हो सकता। उसके अनुसार तो कानून का पालन करना ही स्वतन्त्रता है।

## हीगल और काण्ट की स्वतन्त्रता सम्बन्धी धारणाओं में अन्तर

काण्ट के अनुसार स्वतन्त्रता 'बन्धनों का अभाव' है। काण्ट स्वतन्त्रता का नकारात्मक तथा आत्मपरक दृष्टिकोण प्रस्तुत करता है। उसके अनुसार प्रत्येक व्यक्ति को सदैव अपने व्यक्तित्व की रक्षा करनी चाहिए और राज्य पर अधिक निर्भर नहीं रहना चाहिए। उसके अनुसार स्वतन्त्रता अन्तःकरण के अनुसार आचरण करने में है।

हीगल के अनुसार स्वतन्त्रता एक सामाजिक व्यापार है। व्यक्ति की स्वतन्त्रता इस व्यापार को बढ़ावा देने में है, व्यक्तिगत स्वार्थों को पूरा करने में नहीं। उसने काण्ट की स्वतन्त्रता सम्बन्धी को नकारात्मक तथा आत्मपरक कहा है। इसलिए उसने काण्ट की स्वतन्त्रता की आलोचना करते हुए कहा है कि व्यक्ति की स्वतन्त्रता समाज के कानूनों और परम्पराओं को मानने तथा उसके नैतिक जीवन में भाग लेने में है, अन्तःकरण के अनुसार आचरण करने में नहीं। उसके अनुसार स्वतन्त्रता इच्छा और कामनाओं की स्वच्छन्द प्राप्ति का नाम नहीं है, यह तो सामाजिक हित में स्व–निर्णय की शक्ति है।

इस प्रकार हीगल ने स्वतन्त्रता को नकारात्मक न मानकर सकारात्मक माना है। उसके अनुसार स्वतन्त्रता बन्धनों का अभाव नहीं है। यह तो राज्य के आदेशों का पालन करने में है। उसने स्वतन्त्रता को आत्मगत न मानकर वस्तुगत माना है। हीगल का कहना है कि व्यक्ति को स्वतन्त्रता का अर्थ सामाजिक व्यापार के रूप में समझना चाहिए। उसे अपने सुख के साथ – साथ दूसरों के सुखों पर ज्यादा ध्यान देना चाहिए। यदि उसका कोई कार्य सामाजिक हित के विपरीत हो तो उसे स्वतन्त्रता नहीं कहा जा सकता। उसने काण्ट के व्यक्तिवादी विचार के स्थान पर सामाजिक व्यापार शब्द का प्रयोग किया है। उसने काण्ट के सीमित स्वतन्त्रता के विचार की आलोचना की है। उसका विचार काण्ट की तुलना में कम व्यक्तिवादी है। उसके अनुसार व्यक्ति की निजी स्वतन्त्रता का कोई महत्त्व नहीं है। उसने व्यक्ति की इच्छा को राज्य की इच्छा में विलीन कर दिया है। उसके अनुसार व्यक्ति अपने जीवन का पूर्ण विकास राज्य की इच्छा में ही अपनी इच्छा को विलीन करके ही कर सकता है। इस तरह हीगल ने काण्ट की नकारात्मक, सीमित तथा आत्मगत स्वतन्त्रता के स्थान पर सकारात्मक, असीमित और वस्तुनिष्ठ स्वतन्त्रता का समर्थन किया है।

## हीगल की स्वतन्त्रता सम्बन्धी धारणा की विशेषताएँ

**(Features of Hegel's Theory of Freedom)**

1. हीगल के अनुसार सच्ची स्वतन्त्रता अन्तःकरण के अनुसार कार्य करने में न होकर विशुद्ध विवेक द्वारा प्रेरित होकर कार्य करने में निहित है।
2. स्वतन्त्रता स्वार्थ में नहीं, परमार्थ में निहित है। व्यक्ति को समाज हित की दृष्टि से स्वतन्त्रता का उपभोग करना चाहिए।
3. हीगल की स्वतन्त्रता सम्बन्धी धारणा में अधिकारों की अपेक्षा कर्त्तव्यों पर अधिक जोर दिया गया है। हीगल का कहना है कि –"व्यक्ति की मुक्ति कर्त्तव्यपालन में है।"
4. स्वतन्त्रता एक सामाजिक व्यापार है क्योंकि समाज से अलग व्यक्ति स्वतन्त्रता की कल्पना नहीं कर सकता। उसके अनुसार स्वतन्त्रता सामाजिक प्रथा, परम्परा और नैतिकता के अनुरूप ढालने में है, अपनी व्यक्तिगत इच्छा को स्वतन्त्र आधार प्रदान करने में नहीं। हीगल का कहना है कि "स्वतन्त्रता के किसी दावे का नैतिक समर्थन उस समय तक नहीं किया जा सकता, जब तक वह सामाजिक हित और सामान्य इच्छा द्वारा समर्थित न हो।"
5. हीगल के अनुसार स्वतन्त्र राज्य की अधीनता को स्वेच्छा से स्वीकार करने में है क्योकि राज्य विश्वात्मा का साकार रूप है। राज्य विश्वात्मा के चरम विकास की अवस्था है। जो नागरिक राज्य की आज्ञा का पालन करता है, वही पूर्ण स्वतन्त्रता का उपभोग करता है। राज्य विवेक का वास्तविक रूप होता है। अतः उसके अनुसार आचरण करने में स्वतन्त्रता निहित है क्योंकि विवेक सदैव दोषमुक्त होता है।
6. सच्ची स्वतन्त्रता राज्य के कानूनों का पालन करने में है, उनके विरोध में नहीं, कानून व्यक्ति की इच्छा का ही परिणाम होते हैं। हीगल ने कहा है – "जब व्यक्ति की आत्मनिष्ठ इच्छा कानूनों के समक्ष आत्मसमर्पण करती है तो स्वतन्त्रता और आवश्यकता का अन्तर्विरोध मिट जाता है।"

हीगल के स्वतन्त्रता सम्बन्धी उपर्युक्त विचारों के आधार पर कहा जा सकता है कि हीगल ने स्वतन्त्रता को नकारात्मक व आत्मगत तत्त्वों की परिधि से निकलकर सकारात्मक तथा वस्तुनिष्ठ आधार पर प्रतिष्ठित किया है।

## आलोचनाएँ (Criticisms)

एक महत्त्वपूर्ण सिद्धान्त होने के बावजूद भी हीगल के स्वतन्त्रता सम्बन्धी सिद्धान्त को आलोचना का पात्र बनान पड़ा है। उसकी आलोचना के प्रमुख आधार निम्नलिखित हैं :–

1. हीगल ने राज्य को असीमित और अमर्यादित शक्तियाँ प्रदान करके व्यक्ति का महत्त्व क्षीण कर दिया है। उसने व्यक्ति को राज्य का दास बना दिया है। उसने व्यक्ति की इच्छा को राज्य की इच्छा के साथ मिला दिया है।
2. हीगल ने अधिकारों की अपेक्षा कर्त्तव्यों पर अधिक जोर दिया है। राज्य की वेदी पर व्यक्ति के अधिकारों का बलिदान करने का मतलब व्यक्ति को कुचलना है। उसने व्यक्ति को राज्य रूपी दैत्य के मुँह में धकेल दिया है। आधुनिक राष्ट्र राज्यों में कर्त्तव्यों के साथ – साथ अधिकारों को भी बराबर का महत्त्व दिया जाता है क्योंकि अधिकार और कर्त्तव्य एक सिक्के के दो पहलू होते हैं।
3. हीगल की स्वतन्त्रता की धारणा प्रजातन्त्रीय विचारों के विपरीत है। उसने राज्य की अधीनता को ही स्वतन्त्रता का नाम दिया है जबकि आधुनिक प्रजातन्त्रीय राज्यों की दृष्टि में व्यक्ति के व्यक्तित्व का सम्पूर्ण विकास स्वतन्त्र सामाजिक वातावरण में ही सम्भव है। हीगल व्यक्ति के ऊपर इतने बन्धन लगा देता है कि उससे प्रजातन्त्रीय सिद्धान्तों का उल्लंघन होने लगता है।
4. कानून और स्वतन्त्रता एक साथ नहीं चल सकते। कानून व्यक्ति पर कुछ बन्धन लगाता है जबकि स्वतन्त्रता बन्धनों से मुक्ति का ही नाम है। अतः दोनों एक – दूसरे से अलग हैं।
5. हीगल ने यह भी नहीं बताया कि व्यक्ति की समस्त इच्छाओं का केन्द्र राज्य कैसे बन सकता है। उसका यह विचार वड़ा अस्पष्ट व भ्रमपूर्ण है।

6. हीगल ने नागरिक और राजनीतिक स्वतन्त्रता की उपेक्षा की है। उसने अपने दर्शन में कहीं भी इसका जिक्र नहीं किया है। इस दृष्टि से उसकी स्वतन्त्रता की धारणा अधूरी है। सेबाइन ने कहा है कि – "हीगल के स्वतन्त्रता – सिद्धान्त में कहीं भी किसी प्रकार की नागरिक अथवा राजनीतिक स्वतन्त्रता का भाव नहीं है। अन्त में कहीं भी किसी प्रकार की नागरिक अथवा राजनीतिक स्वतन्त्रता का भाव नहीं है।"
7. हीगल ने व्यक्ति को साधन तथा राज्य को साध्य मानने की भारी भूल की है। हीगल की इस धारणा के अनुसार व्यक्ति को कोई महत्त्व नहीं है। जबकि इस चेतन व अचेतन जगत् में मानव –बुद्धि की कोई बराबरी नहीं कर सकता।
8. हीगल की इस धारणा में फासीवाद व नाजीवाद के बीज मिलते हैं। हीगल ने फासीवादी व नाजीवादियों की तरह जातीय श्रेष्ठता व कर्त्तव्यों पर बल दिया है।

उपर्युक्त आलोचनाओं के बावजूद इस बात को अस्वीकार नहीं किया जा सकता कि हीगल ने स्वतन्त्रता को सामाजिक तथ्य मानकर उसमें सार्वजनिक कल्याण की भावना पर आधारित किया है। उसने काण्ट की नकारात्मक व आत्मपरक धारणा के स्थान पर सकारात्मक तथा वस्तुनिष्ठता का गुण पैदा किया है। इससे स्वतन्त्रता की धारणा को नई दिशा मिली है। यह सिद्धान्त व्यक्तिगत इच्छा के स्थान पर सामाजिक हित को प्राथमिकता देता है। इससे समाज में परमार्थ की भावना का उदय होता है, अन्त में कहा जा सकता है कि अपने अनेक दोषों के बावजूद भी यह भी हीगल की सम्पूर्ण राजनीतिक चिन्तन को एक महत्त्वपूर्ण एवं अमूल्य देन है। स्वतन्त्रता – सिद्धान्त को नई दिशा देने में हीगल द्वारा किए गए प्रयास शाश्वत महत्त्व के हैं।

## 5.11 हीगल का योगदान (Hegel's Contribution)

हीगल का राजनीतिक चिन्तन के इतिहास में एक महत्त्वपूर्ण स्थान है। उसे विश्व का महानतम दार्शनिक माना जाता है। सेबाइन ने हीगल के द्वन्द्ववाद तथा राष्ट्रीय – राज्य की अवधारणा को बहुत महत्त्व दिया है। उसने राजनीतिक चिन्तन को नई

दिशा देने का प्रयास करके अपने आप को राजनीतिक दार्शनिकों की पंक्ति में आगे खड़ा किया है। उसकी समस्त रचनाएँ उसकी विलक्षण प्रतिभा का प्रतिबिम्ब हैं। उसके दर्शन ने परवर्ती विचारकों पर जो प्रभाव डाला है उससे उसके बहुमूल्य योगदान का पता चलता है। उसके इतिहास के दर्शन ने राजनीतिक सिद्धान्त के विकास पर बहुत अधिक प्रभाव डाला है। उसके महत्त्वपूर्ण राजनीतिक विचारों के कारण ही उसे राजनीतिक चिन्तन के इतिहास में एक महानतम दार्शनिक माना जाता है। उसकी महत्त्वपूर्ण देन निम्नलिखित है :–

1. **द्वन्द्ववादी पद्धति (Dialectical Method) :** हीगल की द्वन्द्ववादी पद्धति ने समस्त यूरोपियन दर्शन के क्षेत्र में एक क्रान्ति पैदा कर दी। उसने विज्ञान और धर्म के विरोध को समाप्त करके विकासवाद पर जोर दिया। उसने इस बात पर जोर दिया कि इस सृष्टि का निर्माण आकस्मिक घटना न होकर विश्वात्मा की विकासमान प्रकृति का परिणाम है। उसने बताया कि विश्व निरन्तर प्रगति की ओर गतिवान है। इस प्रकार उसने द्वन्द्ववाद पद्धति के रूप में विश्व में होने वाले महान् परिवर्तनों को समझने के लिए एक नवीन दार्शनिक साधन प्रस्तुत किया। आगे चलकर कार्ल मार्क्स ने द्वन्द्ववादी तर्क को ही अपने दर्शन का आधार बनाया। इस प्रकार हीगल की द्वन्द्ववादी पद्धति उसकी राजनीतिक चिन्तन को महत्त्वपूर्ण देन है।
2. **राष्ट्रीय राज्य की अवधारणा का जनक :** अनेक विचारकों ने हीगल को राष्ट्रीय – राज्य के अवधारणा का जनक राष्ट्रीयता की अग्रदूत, व्याख्याता और प्रबल प्रचारक कहा है। उसने अपनी रचनाएँ उस समय लिखी जब जर्मनी विभिन्न टुकड़ों में बँटकर राष्ट्रवाद से विहिन होता जा रहा था। उसने पराजित जर्मनी को उसके गौरवमयी इतिहास की याद दिलाकर उसमें नई चेतना पैदा की। उसके राष्ट्रवादी विचारों से जर्मनी के साथ – साथ अन्य देशों में राष्ट्रवाद की भावना प्रबल हुई। उसने राष्ट्रवाद को धर्म की तरह एक विश्वास का रूप देने का प्रयास किया। उसकी भावना से प्रभावित होकर ही समार्क ने जर्मनी में राष्ट्रीय एकता की स्थापना की। मैक्सी ने कहा है कि – "वर्तमान युग में पाए जाने वाले राष्ट्रीयता के अतीव उत्कृष्ट विचारों का पोषण हीगल से हुआ है।

उस समय उसका प्रयोजन जर्मनी के राष्ट्रीय एकीकरण के मार्ग में आने वाली बाधाओं को दूर करना था, किन्तु उसके विचारों ने ऐसे सिद्धान्तों के रूप में अपना स्थान बनाया जिनसे ने केवल जर्मनी में, बल्कि अन्य सभी देशों में भी राष्ट्रीयता को धर्म का रूप दिया गया।" अतः यह निर्विवाद सत्य है कि हीगल आधुनिक राष्ट्र–राज्यों के जनक है।

3. **प्रगति का विचार :** हीगल ने प्रगति का विचार देकर मानव सभ्यता के इतिहास के विकास को नई दिशा प्रदान की। उसका मानना है कि संसार की सभी वस्तुओं का निरन्तर विकास हो रहा है। उसके अनुसार मानव सभ्यता का इतिहास भी निरन्तर होने वाले विकास की प्रक्रिया का परिणाम है। उसने बताया कि राज्य भी इसी विकासात्मक प्रकृति का परिणाम है।

4. **राज्य के सावयवी सिद्धान्त का प्रतिपादक :** हीगल ने कहा कि व्यक्ति और राज्य में कोई विरोध नहीं है। यूनानी विचारकों के तरह उसने भी कहा कि राज्य के बिना व्यक्ति की कल्पना नहीं की जा सकती। व्यक्ति का विकास राज्य में ही सम्भव है। हीगल के अनुसार विश्वात्मा का साकार रूप है। यह विश्वात्मा का चरम लक्ष्य है। व्यक्ति भी इसका अविभाज्य अंग है। उसे राज्य का सदस्य होने के नाते अपनी स्वतन्त्रता राज्य की आज्ञा का पालन करने में ही स्वीकार करनी चाहिए। इसी में उसकी भलाई है। इस तरह हीगल ने राज्य को एक साध्य और व्यक्ति को एक साधन मानकर अपने आंगिक सिद्धान्त (Organic Theory) के विचार का पोषण किया है।

5. **राजनीति और नैतिकता का समन्वय :** हीगल ने कहा है कि राज्य 'ईश्वर का पृथ्वी पर अवतरण' (March of God on Earth) है। वह विश्वात्मा का चरम लक्ष्य है। उसने राज्य को विश्वात्मा जिससे नैतिकता घनिष्ठ रूप से जुड़ी हुई का सर्वोच्च रूप माना है। उससे पहले राज्य का नैतिकता के साथ कोई सम्बन्ध नहीं था। इस दृष्टि से उसने आधुनिक चिन्तन का प्रतिपादन किया। आधुनिक युग में प्रमुख समस्या धर्म को राजनीति के साथ मिलाने की है ताकि शासक वर्ग जनता के हितों पर ध्यान दे और अपनी स्वार्थमयी प्रवृति का दमन करे।

6. **फासीवाद व नाजीवाद का प्रेरणा–स्त्रोत :** हीगल की जातीय श्रेष्ठता पर आधारित राष्ट्रवादी तत्त्वों के परिणामस्वरूप मुसोलिनी के फासीवाद को एक महत्त्वपूर्ण आधार मिल गया। उसके द्वारा राज्य को साध्य मानना, अधिकारों की अपेक्षा कर्त्तव्यों पर जोर देना फासीवाद के आधारभूत सिद्धान्त बन गए। हीगन ने राज्य को अलग व्यक्तित्व से विभूषित करके फासीवाद का ही पोषण किया। सेबाइन का कहना है कि – "इटली में फासीवाद ने अपने आरम्भिक चरणों में हीगल के दर्शन से ही आधार ग्रहण किया। तथापि, फासीवाद ने अपने उद्देश्यों की सिद्धि के लिए हीगल के कुछ सिद्धान्तों को अपने अनुरूप ढाल लिया था।" इसी तरह नाजीवाद ने भी हीगल से प्रेरणा ग्रहण की है। अतः फासीवाद तथा नाजीवाद पर हीगल का प्रभाव स्पष्ट है।
7. **सामाजिक समझौता सिद्धान्त का अन्त :** हीगल ने कहा कि राज्य एक कृत्रिम सामाजिक समझौते का परिणाम नहीं है। सामाजिक समझौता राज्य का आधार नहीं हो सकता। राज्य का मूलाधार मानवता की सहज व स्वाभाविक प्रवृत्तियाँ होती है। हीगल के विचारों के कारण सामाजिक समझौता सिद्धान्त का प्रभुत्व समाप्त हो गया।

## 5.12 निष्कर्ष–

हीगल का चिन्तन एक ऐसा बीज था जिसने आगे चलकर 19वीं शताब्दी में सामाजिक दर्शन के प्रत्येक पक्ष पर प्रभाव डाला। हीगल के चिन्तन के आधार पर राजनीतिक सिद्धान्त में जिन विविध प्रवृत्तियों का विकास हुआ, उसमें से कुछ बहुत महत्वपूर्ण हैं। जैसे– द्वन्दात्मक पद्धति जो हीगल से मार्क्स तक पहुंची तथा बाद में साम्यवादी सिद्धान्तों के महत्वपूर्ण आधारों में से एक बनी। दूसरे, ऑक्सफोर्ड विश्वविद्यालय के आदर्शवादियों ने इंग्लैंड के उदारवाद का जो संशोधन किया था, उसमें भी हीगल का चिन्तन एक महत्वपूर्ण तत्व रहा था। तीसरा, इटली में फासिज्म ने प्रारम्भिक चरणों में हींगलवाद से दार्शनिक आधार ग्रहण किया। हीगल के दर्शन ने परवर्ती चिन्तन को बहुत प्रभावित किया। उसका सर्वाधिक प्रभाव बिस्मार्क पर पड़ा। बिस्मार्क ने हीगल को राष्ट्रीयता की विचारधारा के आधार पर ही जर्मनी को

संगठित किया। मार्क्स ने भी हीगल की द्वन्द्ववादी प्रणाली को अपने चिन्तन का आधार बनाया। हीगल ने नैतिकता को राजनीति से जोड़ने का जो प्रयास किया, उससे राजनीतिक सिद्धान्तों को नई दिशा मिली। हीगल ने धर्म और विज्ञान की खाई को भी पाटने का प्रयास किया। उसने राष्ट्र हितों को व्यक्ति के हितों से प्राथमिकता देकर राष्ट्रवाद का प्रसार किया। उसने नग्न व्यक्तिवाद की आलोचना करके उसके दोषों की ओर चिन्तकों का ध्यान आकृष्ट किया। उसके विचारों का प्रभाव जर्मनी के साथ – साथ अन्य देशों पर भी पड़ा। इसलिए उसे सर्वोत्तम दर्शन का सर्वोत्तम प्रतिनिधि कहा जा सकता है।

हीगल के दर्शन में आधुनिक राष्ट्रीय राज्यों का प्रस्फुटन स्पष्ट रूप से देखने को मिलता है। राष्ट्रवाद को धर्म की भांति एक विश्वास तथा मत का रूप देने में हीगल के विचारों ने भारी योगदान दिया है। मैक्सी के शब्दों में 'आधुनिक युग में पाए जाने वाले राष्ट्रीयता के श्रेष्ठतम सिद्धान्तों का पोषण हीगल के विचारों से हुआ है.... उसने अपनी रचनाओं में ऐसे सिद्धान्तों को प्रस्तुत किया जिसने न केवल जर्मनी में, अपितु अन्य सभी देशों में राष्ट्रीयता को धर्म का रूप दिया जा सकता था।

## 5.13 शब्दावली (Keywords)–

प्रस्फुटन– उदय

संसिद्वि– प्रमाणिकता

ऐतिहासिक– इतिहास पर आधारित

द्वन्द्ववाद– ऐसा वाद / सिद्धान्त जो तर्क–वितर्क पर आधारित है।

## 5.14 स्व–मूल्यांकन (Self Assessment)

### लघु उत्तरीय प्रश्न (Short Answer Type Question)–

(1) हीगल से पूर्व जर्मन आदर्शवादी विचारधारा पर प्रकाश डालें।

(2) हीगल के अन्तर्राष्ट्रीयवाद पर क्या विचार है?

(3) हीगल ने नागरिक समाज के बारे क्या लिखा है?

**दीर्घ उत्तरात्मक प्रश्न (Long Answer Type Question)–**

(1) हीगल के दर्शन में 'विश्वात्मा' के सिद्धान्त का आलोचनात्मक मूल्यांकन करें।

(2) हीगल की स्वतंत्रता सम्बन्धी अवधारणा का विवेचन कीजिए।

(3) हीगल के राज्य सम्बन्धी विचारों का आलोचनात्मक मूल्यांकन करें।

(4) राजनीतिक दर्शन के इतिहास में हीगल के योगदान का संक्षेप में मूल्यांकन कीजिए।

## 5.15सन्दर्भ सूची–


1. प्रभुदत्त शर्मा, राजनीतिक विचारों का इतिहास (प्लेटो से मार्क्स), कॉलेज बुक डिपो, जयपुर, 1967.
2. बी.एल.फाड़िया, पाश्चात्य राजनीतिक चिन्तन का इतिहास (प्लेटो से मार्क्स), साहित्य भवन पब्लिकेशन, आगरा, 2018.
3. जे.पी.सूद, पाश्चात्य राजनीतिक विचारों का इतिहास (भाग–प्राचीन व मध्यकालीन), जे.नाथ एण्ड कंपनी, मेरठ, 2008.
4. सेबाइन, ए हिस्ट्री अॅफ पॉलिटिकल थ्योरी, न्यूयार्क, 1973
5. पुखराज जैन, राजनीतिक विज्ञान के सिद्धान्त, साहित्य भवन, आगरा, 1988.
6. रघुवीर सिंह, मध्यकालीन विश्व का इतिहास, रावत प्रकाशन, नई दिल्ली
7. ब्रायन आर. नेल्सन, वेस्टर्न पॉलिटिकल थॉट, वेवलैंड प्रकाशन, 1996.
8. डी. बॉशर व पी. कैली, पॉलिटिकल थिंकरसः फ्रॉम सॉकरेटिज टू द प्रेजेंट, ऑक्सफोर्ड, 2009.
9. जे.कॉलमैन, ए हिस्ट्री ऑफ पॉलिटिकल थॉटः फ्रॉम एंशियट ग्रीस टू अर्ली प्रिस्टियनीटी, ऑक्सफोर्ड, 2000.
10. सी.बी.मैकफर्सन, द पॉलिटिकल थ्योरी ऑफ पसैसिव इंडिवियुलिज्मः हॉब्स टू लॉक, 1962.
11. ली. स्ट्रॉस, हिस्ट्री ऑफ पॉलिटिकल फिलॉस्फी, शिकागो यूनिवर्सिटी प्रैस, 1987.

# अध्याय – 6

# टी० एच० ग्रीन (T.H. Green)

## 6.1 प्रस्तावना (Introduction).

ग्रीन राजनीतिक विचारकों की एक ऐसी श्रेणी में आता है जिसके चिन्तन को आदर्शवाद तथा उदारवाद का मिश्रण माना जाता है। उसे हीगेल के आदर्शवाद के आधारभूत सिद्धान्तों को इस प्रकार व्यक्त किया कि वे अंग्रेजों के मस्तिष्क के लिए ग्राह्य बन सकें। उसने हीगेल के राज्य को कम निरंकुश बना कर तथा व्यक्ति को एक साध्य माना। इसके साथ–साथ उसने कुछ स्थितियों में राज्य की अवज्ञा का अधिकार भी व्यक्ति को दिया। इस प्रकार ग्रीन ने हीगेल के दार्शनिक आदर्शवाद तथा उसके राज्य के सामान्य सिद्धान्त को तो अपना लिया, परन्तु अपनी राजनीति में वह एक उदारवादी ही बना रहा। एक दार्शनिक के रूप में ग्रीन एक नवीन हीगेलवादी है, किन्तु ब्रिटिश परम्परागत उदारवाद को अपनाए रखने के कारण हम उसे जॉन स्टुअर्ट मिल तथा स्पेन्सर की कोटि में रख सकते हैं। परन्तु उसने उदारवाद का भी केवल परम्परागत स्वरूप नहीं अपनाये रखा उसने नकारात्मक उदारवाद के स्थान पर सकारात्मक उदारवाद का समर्थन किया। उसने व्यक्तिगत अधिकारों तथा स्वतंत्राओं के साथ–साथ 'सामान्य हित' का भी विचार भी रखा। इस प्रकार उसने उदारवाद को एक सम्मानित स्थान पर पुनः प्रतिष्ठित कर दिया और उसे एक ऐसा विश्वास बना दिया जिस से कि सकारात्मक राजनीतिक क्रिया का आधार बनाया जा सके। हम उसके दर्शन में आदर्शवाद, उदारवाद, व्यक्तिवाद तथा सत्तावाद का एक सुन्दर समन्वय पाते है। उन्होंने आधुनिक उदारवाद को एक नया धार्मिक विश्वास प्रदान किया, व्यकितवाद को नैतिक तथा सामाजिक बनाया और आदर्शवाद को सन्तुलित एवं परिमार्जित किया। उन्होनें अपने दर्शन में व्यक्ति तथा राज्य दोनों को महत्त्व दिया। वेपर का यह मन्तव्य सही है कि ग्रीन ने अंग्रेजों को बेन्थमवाद से कहीं अधिक सन्तुष्टि प्रदान की। काण्ट के दर्शन पर आधारित होने के कारण उसका आदर्शवाद अधिक सौम्य है।

## 6.2 उद्देश्य (Objectives)–

इस इकाई को पढ़ने के पश्चात् विद्यार्थी जानेगें कि –

- ग्रीन के राजनीतिक चिन्तन का आधार क्या है?
- ग्रीन के स्वतंत्रता सम्बन्धी विचार क्या है?
- अधिकार, कानून तथा नैतिकता किस प्रकार एक–दूसरे से सम्बन्धित है।
- ग्रीन के अनुसार राज्य के क्या अर्थ है।

## 6.3 जीवन परिचय (Life Sketch)

ब्रिटिश दार्शनिक टी०एच० ग्रीन का जन्म 7 अप्रैल, 1836 ई० में यार्कशायर जिले के बिरकिन नामक स्थान पर हुआ। उसका पिता एक प्रसिद्ध पादरी था। लेकिन वह धार्मिक कर्मकाण्ड से सर्वथा दूर रहकर बाइबल की शिक्षाओं के अनुसार जीवन व्यतीत करता था। ग्रीन पर अपने पिता की नैतिकता और प्रचण्ड धार्मिक उत्साह का व्यापक प्रभाव पड़ा। उसने 14 वर्ष की आयु तक घर पर ही ज्ञानार्जन किया और तत्पश्चात् 1850 से 1855 ई० तक उसने रग्बी का अध्ययन किया। 1855 में उसने ऑक्सफोर्ड विश्वविद्यालय में प्रवेश लिया और अपने जीवन का शेष सारा समय यहीं पर बिताया। यद्यपि ग्रीन कोई प्रतिभाशाली विद्यार्थी नहीं था। लेकिन फिर भी उसने स्वयं को अध्ययन कार्य से जोड़े रखा। ऑक्सफोर्ड में ग्रीन की भेंट बेन्जामिन जावेट से हुई। इस विद्वान व्यक्ति के सम्पर्क में आने पर ग्रीन के जीवन में बौद्धिक क्रान्ति का सूत्रपात हुआ। उसने 1860 में बेलियल फलोशिप प्राप्त की, वह 1866 में ऑक्सफोर्ड में ही टयूटर नियुक्त हुए और 1878 तक इसी पद पर कार्य करते रहे। 1878 में वह ऑक्सफोर्ड विश्वविद्यालय में ही नैतिक दर्शन (Moral Philosophy) का प्राध्यपक नियुक्त हुआ और जीवन में बहुत प्रसिद्धि प्राप्त की। अपने अध्यापन कार्ये के साथ – साथ उसने सार्वजनिक मामलों तथा व्यावहारिक राजनीति में भी भाग लिया। वह उदारवादी दल (Liberal Party) का सक्रिय सदस्य रहा और ऑक्सफोर्ड टाउन काउन्सिल से जन प्रतिनिधि के रूप में निर्वाचित हुआ। उसने अपने पद पर रहते हुए शराबबन्दी, गरीबों की शिक्षा में सुधार आदि कार्य किए।

उसने शराब बन्दी कानून बनवाने व उसे लागू करवाने के लिए शराबन्दी आन्दोलन में भाग लिया। लेकिन यह भाग्य की विडम्बना रही कि समाज सेवा को सर्वोच्च प्राथमिकता देने वाले इस महान् दार्शनिक की 26 मार्च, 1882 को 46 वर्ष की अल्पायु में ही मृत्यु हो गई।

## महत्त्वपूर्ण रचनाएँ (Important Works)

ग्रीन ने क्रमबद्ध रूप से लिखते हुए राजनीतिक चिन्तन के इतिहास में अपना अमूल्य योगदान दिया है। उसके जीवनकाल में उसकी कोई रचना प्रकाशित नहीं हुई। अतः आर०एल० नेटलशिप ने ग्रीन पर सबसे प्रिय होने के नाते उसकी रचनाओं को तीन भागों में प्रकाशित किया। उसकी अधिकांश रचनाएँ दर्शनशास्त्र और नीतिविषयक है। उसकी महत्त्वपूर्ण रचनाएँ निम्नलिखित हैं :

1. **लिबरल लेजिस्लेशन एण्ड फ्रीडम ऑफ काण्ट्रेक्ट (Liberal Legislation and Freedom of Contract)** : यह रचना 1880 में आयरिश जमींदारों ओर असामियों के बीच में हुए समझौते को नियन्त्रित करने के लिए ग्लैडस्टन द्वारा प्रस्तुत किए गए प्रस्ताव पर दिए गए भाषण का संग्रह है। यह रचना ग्रीन की सर्वश्रेष्ठ और महत्त्वपूर्ण रचना है।
2. **प्रोलोगोमेना टू एथिक्स (Prolegomena to Ethics) :** यह रचना नीतिशास्त्र से सम्बन्धित है। इसमें ग्रीन द्वारा प्राध्यापक के तौर पर दिए गए नीति उपदेशों का सार संकलित है।
3. **लेक्चर्स ऑन दी प्रिंसिपल्स ऑफ पॉलिटिकल आब्लीगेशन (Lectures on the Principles of Political Obligation) :** यह रचना ग्रीन के राजनीतिक सिद्धान्तों का सार है। इसमें राजाज्ञा पालन के सिद्धान्तों पर व्यापक रूप से लिखा गया है। यह रचना ग्रीन के भाषणों का संकलन है। इस रचना में उसने दार्शनिक विचारधारा पर आधारित राजनीतिक सिद्धान्तों का प्रतिपादन करके एक नया आयाम स्थापित किया है।

4. **लेक्चर्स ऑन इंगलिश रिवोल्यूशन (Lectures on English Revolution) :** इस रचना में ग्रीन द्वारा शानदार क्रान्ति के बारे में प्रस्तुत किए गए भाषणों के अंश संकलित हैं।

इस प्रकार ग्रीन ने अपने रचनाओं में नितिशास्त्र, दर्शनशास्त्र तथा राजनीतिशास्त्र सम्बन्धी विचार प्रस्तुत किए हैं :–

## 6.4 ग्रीन के दार्शनिक प्रेरणा–स्त्रोत (Philosophical Inspiratins of Green)

ग्रीन का दर्शन भी हीगल की ही तरह अध्यात्म तत्त्व से अभिप्रेरित है। ग्रीन ने इस तत्त्व को शाश्वत चैतन्य कहा है। ग्रीन ने इस विचार का निर्माण करने में यूनानी दर्शन रूसो का दर्शन, जर्मन आदर्शवाद आदि का विशेष प्रभाव है। ग्रीन के दार्शनिक प्रेरणा – स्त्रोत निम्नलिखिति हैं :–

1. **यूनानी दर्शन (Greek Philosophy) :** ग्रीन ने अपना अधिकांश समय ऑक्सफोर्ड विश्वविद्यालय में व्यतीत किया। यहाँ पर उसने प्लेटो व अरस्तू की रचनाएँ पढ़ने को मिली। उसने इन रचनाओं का अध्ययन करने के बाद यह निष्कर्ष निकाला कि मनुष्य स्वभाव से एक राजनीतिक प्राणी है, राज्य सदाचार की साँझेदारी है, कानून विशुद्ध तथा निर्विकार बुद्धि की अभिव्यक्ति है और धर्म प्रत्येक व्यक्ति द्वारा अपने सामाजिक कर्त्तव्यों को पालन करने में है। इस प्रकार यूनानी दर्शन ग्रीन के विचारों का प्ररेणा – स्त्रोत है।
2. **रूसो का दर्शन (Rousseau's Philosophy) :** ग्रीन ने रूसो की तरह व्यक्ति की नैतिकता पर विशेष जोर दिया है। रूसो की सामान्य इच्छा को ग्रीन ने भी राज्य की प्रभुत्व शक्ति माना है। उसने सामान्य इच्छा को सामूहिक हित की सामूहिक चेतना का नाम दिया है। ग्रीन का कहना है कि इस सामूहिक चेतना का उद्देश्य सार्वजनिक हित होता है। यह एक ऐसी नैतिक चेतना होती है जिसकी आज्ञा का पालन करके मनुष्य अपनी नैतिक स्वतन्त्रता की प्राप्ति करता है। यह चेतना समाज की सद् इच्छा होती है जो समाज की समाजिक हितों को पूरा करती है। इस तरह ग्रीन पर रूसो के दर्शन का भी प्रभाव है।

3. **जर्मन आदर्शवाद (German Idealism)** : ग्रीन पर जर्मन आदर्शवाद के तीन प्रतिनिधियों – काण्ट, फिक्टे तथा हीगल का भी विशेष प्रभाव है। उसका दर्शन काण्ट के उस स्वतन्त्र इच्छा के सिद्धान्त पर आधारित है। जिसके कारण मनुष्य सदैव अपने को साध्य समझता है। काण्ट की ही तरह ग्रीन सद् इच्छा को ही मूल्यवान वस्तु मानता है। वैयक्तिक स्वतन्त्रता, युद्ध और अन्तरराष्ट्रीय नैतिकता के बारे में ग्रीन पर काण्ट का अधिक प्रभाव है। हीगल की ही तरह ग्रीन का भी मानना है कि शाश्वत दैवी चेतना अथवा विवेक निरन्तर अपने रचम लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए आगे बढ़ती रहती है। ग्रीन हीगल की ही तरह राज्य को सर्वोच्च समुदाय मानता है। उसका कहना है कि राज्य से बाहर और राज्य की विरूद्ध व्यक्ति के कोई अधिकार नहीं हो सकते। उसके अनुसार राज्य सामान्य इच्छा की पूर्ण अभिव्यक्ति होने के नाते सर्वश्रेष्ठ है। स्वतन्त्रता प्रकार कहा जा सकता है कि ग्रीन पर हीगल व काण्ट का विशेष प्रभाव है।

4. **परम्परा विरोधवाद (Non - Conformism)** : परम्परा विरोधियों ने ग्रीन के राजनीतिक चिन्तन पर व्यापक प्रभाव डाला है। परम्परा विरोधी चर्च का विरोध करते थे और नैतिकता पर बहुत जोर देते थे। वे सामाजिक व्यसनों पर प्रतिबन्धों के प्रबल समर्थक थे। ग्रीन के विचारों में भी नशेबन्दी , नैतिकता, सम्पत्ति आदि विचारों के समावेश का श्रेय परम्परा – विरोधियों के प्रभाव को ही दर्शाता है। उसने परम्परा – विरोधियों की तरह भू – स्वामित्व का तो विरोध किया, लेकिन निजी सम्पत्ति के सिद्धान्त का समर्थन किया।

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि ग्रीन पर यूनानी दर्शन, रूसो के दर्शन, जर्मन आर्दशवाद तथा परम्परा –विरोधियों का व्यापक प्रभाव पड़ा जो आगे चलकर उसकी रचनाओं में मुखरित हुआ। उसने आगे चलकर काण्ट और हीगल की विचारधारा का इंगलैण्ड की व्यक्तिवादी विचारधारा में मेल कर दिया। इन्हीं प्रभावों के कारण ही उसने उदारवाद का आदर्शवादी संशोधन किया।

## 6.5 ग्रीन का आध्यात्मिक सिद्धान्त (Green's Metaphysical Theory)

आध्यात्मिक सिद्धान्त ग्रीन के राजनीतिक चिन्तन का प्रमुख आधार है। ग्रीन ने इसे काण्ट से ग्रहण किया है। ग्रीन के सिद्धान्त का आरम्भ बिन्दु काण्ट का यह विश्वास है कि अन्तिम सत्य को विशुद्ध बुद्धि तथा यदा –कदा आत्मानुभूति के आलोक – खण्ड द्वारा जाना जा सकता है, अनुभवप्रधान रीति द्वारा नहीं। ग्रीन ने इस सिद्धान्त के बारे में हीगल की पूर्ण बुद्धि या निरपेक्ष आत्मा का भी अनुसरण किया है। काण्ट व हीगल से अपना आधार ग्रहण करते हुए ग्रीन इस विश्वात्मा या विचार या विवेक को 'शाश्वत चेतना' (Eternal Consciousness) का नाम देता है। इसे ईश्वर भी कहा जाता है। यह संसार की सभी जड़ व चेतन वस्तुओं में विद्यामन है। मनुष्य आत्म – चेतना के गुण के कारण सृष्टि के सभी प्राणियों से अलग है। सृष्टि का निर्माण ईश्वर करता है और मनुष्य इस शाश्वत चेतना का अंग है। दोनों मिलाकर एक सम्पूर्ण ईकाई का निर्माण करते हैं। मनुष्य में सोचने – समझने की शक्ति होती है, जो सृष्टि के अन्य जीवों में नही होती। इसलिए मनुष्य अपने जीवन को भौतिक आवश्यकताओं की पूर्ति तक ही सीमित न करके एक उच्चतर लक्ष्य को प्राप्त करने की दिशा में ले जाता है। वह अपने अन्दर एक दैवीय अनुभूति करना चाहता है। इसलिए वह उच्च नैतिक जीवन व्यतीत करना चाहता है। इस शाश्वत चेतना का प्रमुख गुण स्वतन्त्रता है। शाश्वत चेतना का अंश होने के नाते मनुष्य का भी प्रमुख गुण स्वतन्त्रता है, दिव्य चेतना का अंश होने के नाते मनुष्य सद् इच्छाओं के अनुसार कार्य करने के कारण स्वतन्त्र होता है। शाश्वत चेतना का अंश होने के नाते मुनष्य के व्यक्तित्व के विकास के लिए भी पूरा प्रयास करना चाहिए क्योंकि व्यक्ति का कल्याण समाज का कल्याण करने का एक माध्यम होता है। ग्रीन का कहना है कि समाज के घटकों के उत्थान के बिना सम्पूर्ण समाज को विकास सम्भव नहीं हो सकता। उसका कहना है कि समाज कल्याण के भाव से ही लोगों में भ्रातृभाव व समानता का गुण पैदा होता है। ग्रीन ने कहा है कि प्रत्येक व्यक्ति का अपना विशिष्ट महत्त्व और गौरव है, उसका पूरा सम्मान किया जाना चाहिए। किसी को दूसरे का शोषण करने का कोई अधिकार नहीं हो सकता। दैवी सत्ता का अंश होने के कारण प्रत्येक मनुष्य का यह लक्ष्य होना चाहिए कि वह अपने नैतिक

विकास के लिए दैवीय गुणों का अनुसरण करे और स्वयंमेव अच्छा व सद्गुणी बने। कानून व्यक्ति को अच्छा नहीं बना सकता, जब तक मनुष्य अपने अन्दर के दोषों को स्वयं नहीं सुधारे। राज्य व कानून केवल ऐसी परिस्थितियाँ ही उत्पन्न कर सकते हैं जिनमें मनुष्य अपना पूर्ण विकास कर सके।

इस प्रकार ग्रीन की शाश्वत चेतना (Eternal Consciousness) वह सम्पूर्ण है जिसमें प्रत्येक भाग अपना तर्कसम्मत स्थान रखता है। यह विश्वव्यापी है जिसकी तरफ सृष्टि की प्रत्येक वस्तु जाने का प्रयास करते है ताकि वह सम्पूर्ण को प्राप्त हो सके। यह वह दैविक सत्ता है जिसमें प्रत्येक वस्तु रहती है, विचरण करती है तथा अपनी सत्ता रखती है। इसका प्रमुख गुण स्वतन्त्रता है। शाश्वत चेतना का अंश होने के कारण यह व्यक्ति का भी विशिष्ट गुण है। अतः राज्य को मनुष्य के मार्ग में आने वाली बाधाओं को दूर करके मनुष्य को भौतिक जीवन व्यतीत करने के लिए अनुकूल व उपयोगी सभी परिस्थितियाँ प्रदान करनी चाहिएं।

## 6.6 स्वतन्त्रता का सिद्धान्त (Theroy of Freedom)

ग्रीन के सभी राजनीतिक विचार स्वतन्त्रता के सिद्धान्त के इर्द–गिर्द ही घूमते हैं। उसने अपने अधिकारों वे राज्य के सिद्धान्त को स्वतन्त्रता के विचार पर ही आधारित किया है। ग्रीन स्वतन्त्रता को शाश्वत चेतना (Eternal Consciousness) का प्रमुख गुण मानता है। शाश्वत चेतना (परमात्मा) का एक प्रमुख अंग होने के नाते मनुष्य की मनुष्यता का भी प्रमुख तत्त्व या गुण स्वतन्त्रता है। मनुष्य की आत्मा सदैव स्वतन्त्रता प्राप्त करने का प्रयास करती है। यह स्वतन्त्रता ही अधिकारों की जन्मदाता है और अधिकारों की सुरक्षा के लिए राज्य को मूर्त रूप देती है। बार्कर का कहना है कि –"मानव चेतना स्वतन्त्रता चाहती है, स्वतन्त्रता में अधिकार निहित है; अधिकार राज्य की माँग करते हैं।" ग्रीन का कहना है कि अधिकार वे परिस्थितियाँ हैं जिनमें मानव आत्मा की स्वतन्त्रता व्यावहारिक रूप धारण करके लोक – कल्याण का मार्ग प्रशस्त करती है। अधिकार राज्य में ही सम्भव होते हैं क्योंकि राज्य में ही व्यक्ति अपना पूर्ण नैतिक विकास कर सकता है। इन राज्य प्रदत्त परिस्थितियों का प्रयोग

करके व्यक्ति की आत्मा शाश्वत चेतना के साथ एकाकार हो सकती है। ऐसा तभी सम्भव है, जब व्यक्ति को सम्पूर्ण रूप से स्वतन्त्रता प्राप्त हो।

## स्वतन्त्रता के प्रकार (Types of Freedom)

ग्रीन ने स्वतन्त्रता के दो प्रकार – आन्तरिक (Internal) तथा बाह्य (External) बताए हैं। **आंतरिक स्वतन्त्रता** नीतिशास्त्र का विषय है। आन्तरिक स्वतन्त्रता का प्रयोग करके मनुष्य अपनी दास वृत्तियों पर काबू पाता है। आन्तरिक स्वतन्त्रता का उद्देश्य व्यक्ति की वासनाओं को वश में रखना है। **बाह्य स्वतन्त्रता** का अर्थ ऐसी परिस्थितियों का निर्माण करना है, जिनमें प्रत्येक व्यक्ति अपने वास्तविक हित के कार्यों को पूरा कर सके और अपनी आत्मा का विकास करने में किसी प्रकार की बाधा महसूस न करे। ऐसी परिस्थितियाँ पैदा करने वाली शर्तें अधिकार कहलाती हैं और इन्हीं से स्वतन्त्रता प्राप्त होती है। इन अधिकारों की रक्षा राज्य द्वारा ही सम्भव है।

## स्वतन्त्रता का अर्थ (Meaning of Freedom)

ग्रीन के अनुसार स्वतन्त्रता न तो मनमाने ढंग से कार्यों को करने में है और न प्रतिबन्धों की व्याख्या है। यह एक ऐसी सकारात्मक वस्तु है जिसका अर्थ ऐसा कार्य करने की या ऐसी सुविधाओं के उपभोग करने की छूट है जो करने या उपभोग योग्य हों। ग्रीन ने आगे कहा है कि स्वतन्त्रता का अर्थ है – "स्व अर्थात् अपनी आत्मा के विकास में सहायक शुभ एवं सामाजिक हित को पूरा करने वाली दैवी प्रवृत्तियाँ।" स्वतन्त्रता का अभिप्राय ऐसे कार्यों को किए जाने से है जो हमारी आत्मोन्नति में तथा समाज की उन्नति में सहायक हों। ग्रीन का कहना है कि व्यक्ति उसी दशा में स्वतन्त्र कहला सकता है "जब वह आत्मा की उन्नति के आदर्श को प्राप्त करे तथा उस नियम की पालना अपना कर्त्तव्य समझे जिसके बारे में उसका यह विचार है कि उसे इसका पालन करना चाहिए।"

इस प्रकार ग्रीन के अनुसार स्वतन्त्रता का अर्थ केवल प्रतिरोध या अनिवार्यता से छुटकारा पाना नहीं है। यह मनमाने ढंग से कार्य करने की भी छूट नहीं है। इससे उसका तात्पर्य ऐसे अधिकार से है जिसका उपभोग प्रत्येक व्यक्ति अपने सहयोगियों

के लिए जो करने योग्य हो तथा आनन्द लेने के लिए जो आनन्द लेने के योग्य है।"

**स्वतन्त्रता की विशेषताएँ (Features of Freedom)**

ग्रीन की स्वतन्त्रता की धारणा की प्रमुख विशेषताएँ निम्नलिखित हैं :–

1. **यह निश्चित प्रकार से काम करने की स्वाधीनता :** ग्रीन के अनुसार स्वतन्त्रता का अर्थ व्यक्ति को सभी प्रकार के कार्यों को करने की छूट नहीं है। कुछ कार्य नैतिक व धार्मिक दृष्टि से निन्दनीय हो सकते हैं। इसलिए इन कार्यों को करने की व्यक्ति को छूट नहीं दी जा सकती। ग्रीन सभी उपयोगितावादी व व्यक्तिवादी विचारकों के स्वतन्त्रता सम्बन्धी दावों का विरोध करते हुए कहते हैं कि व्यक्ति की आत्म शाश्वत चेतना का अंश है और एक नैतिक प्राणी होने के नाते व्यक्ति का उद्देश्य आत्मविकास के साथ – साथ ईश्वर या शाश्वत चेतना के सभी अंगों का विकास करने में योगदान देना भी है। जो कार्य इस उद्देश्य को पूरा करे, समाज की उन्नति करे तथा व्यक्ति का नैतिक विकास करे, उन्हीं कार्यों को करना स्वतन्त्रता है। इससे व्यक्ति को सच्चा सुख व शान्ति मिलती है। बुरे कार्य व्यक्ति की आत्मा के विकास में बाधक होते हैं। स्वतन्त्रता केवल ऐसे कार्य करने का नाम है जब मनुष्य अपनी इन्द्रियों और वासनाओं से अभिभूत होकर कार्य न करे अपितु आत्मा के विकास और समाज हित में वृद्धि करने वाले कार्य करे। बार्कर के ग्रीन के दावे या मत को पुष्ट करते हुए कहा है कि – "अच्छे कार्य करने की प्रेरणा देने वाली, सद् इच्छा के आदेशों के पालन करने की स्वतन्त्रता ही सच्ची स्वतन्त्रता हो सकती है।" इस तरह ग्रीन की स्वतन्त्रता कुछ विशिष्ट कार्यों तक ही सीमित है।
2. **स्वतन्त्रता सकारात्मक होती है :** ग्रीन व्यक्तिवादियों के इस विचार का विरोध करता है कि सभी प्रकार के 'बन्धनों का अभाव' ही स्वतन्त्रता है। ग्रीन इसे नकारात्मक स्वतन्त्रता का नाम देता है। ग्रीन ने नकारात्मक स्वतन्त्रता के स्थान पर सकारात्मक स्वतन्त्रता का सिद्धान्त पेश किया। उसने कहा कि व्यक्ति की योग्यताओं व गुणों के विकास के लिए राज्य की शक्ति का प्रयोग किया जा सकता है। उदाहरणार्थ, राज्य द्वारा शिक्षा की व्यवस्था, स्वास्थ्य –

सुधार के नियमों का निर्माण, आर्थिक व औद्योगिक कानून बनाने आदि से व्यक्ति की स्वतन्त्रता पर कोई आँच नहीं आती। इनसे व्यक्ति की आत्मोन्नति के अवसर बढ़ते हैं और समाज के हित में भी वृद्धि होती है। शराब पीना, जुआ खेलना आदि नैतिकता विरोधी कार्यों पर राज्य द्वारा प्रवृत्तियों पर अंकुश लगाना तथा दैवी प्रवृत्तियों को बढ़ावा देना ही स्वतन्त्रता है। इसलिए राज्य का यह परम कर्त्तव्य बनता है कि मनुष्य के उत्तम जीवन के लक्ष्य को पूरा करने व आत्मा के विकास में बाधक कार्यों की रोक लग। इसी से व्यक्ति को सच्ची स्वतन्त्रता प्राप्त हो सकती है।

उपर्युक्त विशेषताओं के आधार पर कहा जा सकता है कि स्वतन्त्रता का अर्थ आत्म सन्तुष्टि या स्वच्छन्दता नहीं है । यह एक प्रकार की मानव चेतना है जो शाश्वत चेतना (परमात्मा) का अंग है और इसी में अधिकार निहित हैं जिनकी रक्षा राज्य नाम की संस्था द्वारा ही सम्भव है अर्थात् अनुचित कार्यों पर रोक लगाकर ही सच्ची स्वतन्त्रता की प्राप्ति की जा सकती है।

**काण्ट व हीगल से तुलना (Comparision with Kant and Hegel)**

ग्रीन काण्ट के इस विचार से सहमत है कि मनुष्य की इच्छा स्वतन्त्र है। जब व्यक्ति अपनी वासनात्मक प्रवृत्तियों के अनुसार कार्य करते हैं तो व्यक्ति की स्वतन्त्रता समाप्त हो जाती है। काण्ट की ही तरह ग्रीन भी यह मानता है कि मनुष्य के जीवन का लक्ष्य सदृश कार्यों को करना है और भोग विलास के कार्यों से दूर रहना है। नैतिक कार्यों को करने से ही स्वतन्त्रता प्राप्त हो सकती है। किन्तु काण्ट नैतिक कर्त्तव्यादेश के अनुसार काम करने को ही स्वतन्त्रता मानता है, जबकि ग्रीन आत्म–विकास तथा सामाजिक कल्याण में सहायक कार्यों को ही स्वतन्त्रता का नाम देता है। काण्ट की स्वतन्त्रता वैयक्तिक है और उसका कार्यक्षेत्र भी सीमित है। उसका राज्य या समाज के हित से कोई सरोकार नहीं है। किन्तु ग्रीन की स्वतन्त्रता का विचार व्यापक और सामाजिक है। उसका विचार हीगल के विचार से मेल खाता है। दोनों के अनुसार मनुष्य सभी तक स्वतन्त्र है, जब तक वह दिव्य भावना के साथ अभेद सम्बन्ध बनाए रखता है। हीगल के अनुसार राज्य इस दिव्य

भावना का श्रेष्ठ रूप है। अतः उसके आदेशों का पालन करने में ही स्वतन्त्रता है। ग्रीन के अनूसार स्वतन्त्रता सामाजिक हित में निहित है। व्यक्ति शाश्वत चेतना का एक उत्कृष्ट अंश होने के नाते उसकी इच्छानुसार कार्य करके स्वतन्त्रता प्राप्त करता है। ग्रीन हीगल के इस मत से सहमत है कि दैवी भावना राज्य में ही मूर्त रूप धारण करती है। इसलिए सच्ची स्वतन्त्रता राज्य में ही प्राप्त हो सकती है।

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर कहा जा सकता है कि ग्रीन ने काण्ट से नैतिकता का आदर्श ग्रहण किया और हीगल से सामाजिक पहलू का। इन दोनों का समन्वय करके ग्रीन ने अपना स्वतन्त्रता सम्बन्धी सिद्धान्त खड़ा किया है। किन्तु ग्रीन ने काण्ट के आत्मगत तत्त्व तथा हीगल के अन्य राज्यादेश पालन के भाव से मुक्त है। इसी कारण से ग्रीन का स्वतन्त्रता का सिद्धान्त काण्ट तथा हीगल के सिद्धान्तों से उत्कृष्ट है और इस सिद्धान्त का राजनीतिक चिन्तन के इतिहास में एक महत्त्वपूर्ण स्थान है।

## 6.7 अधिकारों सम्बन्धी सिद्धान्त (Theory of Rights)

ग्रीन के अधिकारों सम्बन्धी विचार उसके स्वतन्त्रता सम्बन्धी सिद्धान्त में ही निहित हैं। उसके अधिकारों सम्बन्धी विचार लॉक व अन्य सामाजिक समझौतावादी विचारकों से भिन्न है। वह लॉक द्वारा प्रतिपादित अधिकारों सम्बन्धी विचार का खण्डन करता है। उसका मानना है कि अधिकार समाज से बाहर प्राकृतिक अवस्था में नहीं हो सकते। सामाजिक स्वीकृति के अभाव में अधिकारों का होना असम्भव बात है। उसका मानना है कि स्वतन्त्रता के लिए अधिकार जरूरी बात है। उसका मनाना है कि स्वतन्त्रता के लिए अधिकार जरूरी होते हैं। उसके अनुसार अधिकार व्यक्ति के नैतिक विकास में योगदान देने का सर्वोत्तम साधन होते हैं। इसलिए प्रत्येक राज्य का यह कर्त्तव्य बनता है कि वह सर्वाभौम अधिकारों की व्यवस्था करे।

### अधिकारों की परिभाषा

ग्रीन अधिकारों का तात्पर्य जीवन की भौतिक अथवा बाह्य स्थितियों से लेता है जो कि व्यक्तियों द्वारा अपने नैतिक आदर्श की प्राप्ति के लिए आवश्यक है। प्रत्येक व्यक्ति अपने जीवन के चरम लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए कुछ सुविधाएँ चाहता

है। ये सुविधाएँ या परिस्थितियाँ ही अधिकार होते हैं। अधिकारों को परिभाषित करते हुए ग्रीन कहता है कि – "अधिकार व्यक्ति द्वारा अपने नैतिक उद्देश्यों को पूरा करने के लिए राज्य द्वारा प्रदत्त शक्ति है।" उसे अधिकार समाज के हित में वृद्धि करने के लिए समाज द्वारा प्रदान किए जाते हैं ताकि वह अपने लक्ष्य को सामाजिक स्वीकृति के बल पर प्राप्त कर सके।

## अधिकारों की उत्पत्ति

ग्रीन का कहना है कि अधिकारों का जन्म व्यक्ति के दावों या मांगों के कारण होता है। व्यक्ति नैतिक प्राणी होने की हैसियत से एक नैतिक लक्ष्य प्राप्त करने के लिए कुछ सुविधाएँ चाहता है। इन सुविधाओं की समाज के अन्य व्यक्तियों को भी आवश्यकता होती है। लेकिन इन दावों को समाज द्वारा स्वीकृति मिलने पर ही अधिकारों की सृष्टि होती है। प्रत्येक व्यक्ति का दावा अपनी जगह उचित होता है लेकिन वह समाज की दृष्टि में सही होने पर ही स्वीकृति पा सकता है। बिना सामाजिक स्वीकृति के दावा कोरा दावा ही रह जाता है। दावा अधिकार का रूप उसी समय ले सकता है जब समाज उसे स्वीकार करके क्रियान्वित करे। व्यक्ति समाज के घटक के रूप में ही अधिकारों का दावा व उपभोग कर सकता है, इसलिए अधिकारों का जन्म सामाजिक स्वीकृति से ही होता है। इस प्रकार अधिकार की सृष्टि दो तत्त्वों से होती है। प्रथम तो व्यक्ति का दावा या मांग तथा दूसरा समाज की स्वीकृति।

ग्रीन के इस विचार से यही अर्थ निकलता है कि व्यक्ति को सारे अधिकार समाज का सदस्य होने के नाते प्राप्त होते हैं और एक सच्चा नैतिक व्यक्ति ही उनका सार्वजनिक कल्याण के लिए प्रयोग कर सकता है। अधिकार प्राकृतिक इसलिए होते सकते हैं कि मनुष्य एक विवेकशील व नैतिक प्राणी होने के नाते अपने नैतिक लक्ष्य को प्राप्त करने के प्रयास करता है। इन अधिकारों को प्राकृतिक इसलिए कहा जा सकता है कि वे नैतिक उद्देश्य को पूरा करने के लिए सामान्य हित में कार्य करता है तो उसके स्वयं के हित का सामाजिक हित से मेल हो जाता है। इसलिए सामाजिक हित के लक्ष्य में व्यक्ति का नैतिक लक्ष्य भी छिपा हुआ है। इसलिए

प्रत्येक समाज को अपने सभी घटकों को अधिकार प्रदान करने चाहिएं। सामाजिक कल्याण ही अधिकारों की अन्तिम कसौटी होती है।

## अधिकारों के प्रकार (Types of Rights)

ग्रीन के अनुसार अधिकार दो प्रकार के होते हैं – (i) आदर्श या प्राकृतिक अधिकार (ii) कानूनी या वास्तविक अधिकार

प्राकृतिक अधिकारों को नैतिक अधिकार भी कहा जाता है। जब तक अधिकारों को कानून द्वारा स्वीकार नहीं किया जाता तब तक वे नैतिक कर्त्तव्य मात्र ही रहते हैं। परन्तु ये नैतिक दृष्टि से आवश्यक होते हैं। भारत के संविधान में वर्णित नीति – निर्देशक सिद्धान्त नैतिक निर्देश मात्र हैं। इन्हें कानूनी रूप नहीं दिया गया है। इसलिए ग्रीन के नैतिक आदर्श प्राकृतिक अधिकार हैं। ये कानूनी अधिकारों से अधिक व्यापक और गम्भीर होते हैं। प्राकृतिक अधिकार केवल यथार्थ या कानूनी अधिकारों के लिए मार्ग प्रशस्त करते हैं। इन्हें नैतिक मान्यता मिली होती है, कानूनी नहीं। कानूनी अधिकार राज्य की व्यवस्था होते हैं। इन्हें राज्य द्वारा ही निर्मित व संचालित किया जाता है। उदाहरण के लिए दास – प्रथा काफी लम्बे समय तक कानूनी अधिकार रहा। नैतिक दृष्टि से गलत होते हुए भी दास – प्रथा को कानूनी दर्जा मिला रहा और बाद में नैतिक आधार पर ही इसे कानून द्वारा समाप्त कर दिया गया। इस तरह कानूनी अधिकार तथा प्राकृतिक अधिकार एक – दूसरे से घनिष्ठ रूप से जुड़े हुए हैं।

## अधिकार नैतिकता और कानून में सम्बन्ध

ग्रीन का मानना है कि अधिकार हमारे नैतक जीवन व कानून से घनिष्ठ रूप से जुड़े हुए हैं लेकिन फिर भी उनमें भेद है। अधिकारों के अभाव में नैतिक लक्ष्य की प्राप्ति नहीं की जा सकती, परन्तु अधिकारों के पीछे कानूनी शक्ति होती है, उनका बलपूर्वक पालन कराया जा सकता है, नैतिक कर्त्तव्यों का नहीं। इनका पालन तो व्यक्ति की स्वेच्छा पर ही निर्भर करता है। अधिकार प्रारम्भ में नैतिक मांगे होती हैं जो बाद में कानून की स्वीकृति प्राप्त करके अधिकारों का रूप ले लेती हैं। ग्रीन का कहना है कि दास – प्रथा लम्बे समय तक कानून का सहारा लेकर एक अनैतिक

अधिकार के रूप में पोषित होती रही। लेकिन बाद में कानून बनाकर ही उसकी समष्टि कर दी गई। कुछ अधिकार तो कर्त्तव्य मात्र होते हैं जिन्हें नैतिक दृष्टि से आवश्यक मानकर कानून द्वारा अधिकार का दर्जा दे दिया जाता है। लेकिन कानून द्वारा स्वीकृत सभी अधिकार नैतिक नहीं हो सकते।

## अधिकार राज्य की माँग करते हैं

ग्रीन का कहना है कि अधिकार स्वतन्त्रता में ही निहित होते हैं। स्वतन्त्रता मानव चेतना पर आधारित होती है और अधिकार स्वतन्त्रता पर। अधिकार स्वतन्त्रता को सुदृढ़ता व सुनिश्चित प्रदान करते हैं। शाश्वत चेतना का अंश होने के नाते मनुष्य में स्वतन्त्रता के रूप में नैतिक लक्ष्य की ओर अग्रसर होने की इच्छा पाई जाती है। वह सामाजिक हित में ही अपना हित देखता है। वह परम नैतिक लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए सुरक्षा की गारण्टी चाहता है। इसलिए उसे राज्यरूपी सकारात्मक शक्ति की जरूरत पड़ती है। अधिकार नैतिक विकास तथा स्वतन्त्रता के उपभोग के लिए आदर्श आवश्यकताएँ होती हैं। इन आदर्श आवश्यकताओं को लागू करने के लिए समाज को इस शक्ति (राज्य) की आवश्यकता पड़ती है। यह सर्वोच्च शक्ति साँझी नैतिक चेतना होती है। इसे सामान्य इच्छा भी कहा जा सकता है। इस सामान्य इच्छा का मूर्त रूप राज्य है। राज्य ही व्यवहार में अधिकारों को लागू करता है। वह अधिकारों को बनाए रखने के लिए कानून का सहारा लेता है। इस प्रकार राज्य उन बाधाओं को दूर करता है। वह अधिकारों को बनाए रखने के लिए कानून का सहारा लेता हैं। इसलिए ग्रीन कहता है कि मानव चेतना स्वतन्त्रता चाहती है। स्वतन्त्रता में अधिकार निहित होते हैं तथा इन अधिकारों को लागू करने के लिए राज्य अस्तित्व में आता है। इस प्रकार राज्य इन अधिकारों का संरक्षक है। बिना राज्य के न तो अधिकारों की कल्पना की जा सकती है और न ही उनका सदुपयोग सम्भव है।

## अधिकारों की अवज्ञा

ग्रीन का कहना है कि यदि कोई अधिकार व्यक्ति के नैतिक विकास के मार्ग में बाधा उत्पन्न करे तो उसकी अवज्ञा करने का उसे पूरा अधिकार है क्योंकि अधिकार

व्यक्ति के नैतिक उत्थान के लिए ही बनाए जाते हैं। इस लक्ष्य में असफल रहने पर अधिकारों का कोई महत्त्व नहीं रह जाता। इस प्रकार ग्रीन नैतिक प्रणाली को ही अधिकारों की उपयोगिता की कसौटी सिद्ध कर देता है।

### आलोचना (Criticism)

ग्रीन के अधिकारों सम्बन्धी विचार पूर्णतया दोषमुक्त नहीं है। उनमें परस्पर विरोधाभास पाया जाता है। वह एक तरफ तो प्राकृतिक अधिकारों को नैतिक क्षमता की उपज मानता है और दूसरी तरफ उस पर समाज की स्वीकृति को भी आवश्यक मानता है। इसी तरह उसके विचारों में अस्पष्टता भी है। वह व्यक्ति को विरोध का अधिकार भी प्रदान करता है। एक तरफ तो वह इन्हें शाश्वत चेतना पर आधारित मानव चेतना की उत्कृष्ट इच्छा पर आधारित करता है। दूसरी तरफ अधिकारों का नैतिक विकास में बाधा उत्पन्न करने की इच्छा भी बताता है। ये दोनों बातें अस्पष्ट तथा परस्पर विरोधाभासी हैं। एक तरफ तो वह अन्तःकरण को ही सभी प्रश्नों का अन्तिम न्यायालय मानता है, दूसरी तरफ व्यक्ति को राज्य या समाज का आंशिक विरोध करने का अधिकार देता है। अतः ग्रीन का अधिकारों का सिद्धान्त विरोधाभासी व अस्पष्ट है।

## 6.8 राज्य सम्बन्धी सिद्धान्त (Theory of the State)

ग्रीन का राज्य सम्बन्धी सिद्धान्त उसके स्वतन्त्रता के सिद्धान्त पर ही आधारित है। उसका कहना है कि मनुष्य शाश्वत चेतना (परमात्मा) का प्रमुख अंश है। मानव चेतना आत्म – विकास के लिए सदैव प्रयासरत रहती है। इसके लिए उसे स्वतन्त्रता की आवश्यकता पड़ती है, स्वतन्त्रता के लिए अधिकार तथा अधिकारों की सुरक्षा के लिए राज्य की आवश्यकता पड़ती है। इस तरह काण्ट, हीगल तथा प्लेटो जैसे दार्शनिकों की तरह ग्रीन भी राज्य को मानवीय चेतना की उपज मानकर अपने सिद्धान्त को स्वतन्त्र नैतिक इच्छा पर आधारित करता है।

मानव चेतना का विकास स्वतन्त्रता के बिना नहीं हो सकता। स्वतन्त्रता किसी भी योग्य तथा उपभोग योग्य कार्य करने की सकारात्मक शक्ति है। यह सामाजिक हित में योगदान देकर ही प्राप्त हो सकती है। शाश्वत चेतना के अंश के रूप में मानव चेतना सदैव सामाजिक भलाई के लिए ही कार्य करती है। अतः स्वतन्त्रता अपनी चेतना के अनूसार सब कूछ करने योग्य कार्यों को करने में होती है। मानव अपना नैतिक विकास स्वतन्त्रता के बिना नहीं कर सकता। स्वतन्त्रता का आधार आत्म–चेतना होती है और आत्म – चेतना भी इसी का अनुसरण करती है। अपनी पूर्णता की तरफ अग्रसर होने के लिए कुछ परिस्थितियों की जरूरत होती है। इसलिए स्वतन्त्रता में ही अधिकार निहित होते हैं। ये अधिकार आत्म – चेतना के पूर्ण विकास के लिए व्यक्ति के दावे होते हैं। जब समाज इन्हें मान्यता दे देता हैं तो ये अधिकार का रूप ग्रहण कर लेते हैं। इन्हें समुदाय की नैतिक चेतना द्वारा ही मान्यता प्रदान की जाती है। वे मनुष्य के नैतिक विकास के लिए आवश्यक परिस्थितियाँ होते हैं। इन परिस्थितियों का उचित उपभोग करने के लिए राज्य रूपी संस्था की आवश्यकता पड़ती है। राज्य की व्यवहार में इन अधिकारों को लागू करता है। इस तरह मानव चेतना पर आधारित होने के कारण राज्य कृत्रिम या दैवी संस्था न होकर एक स्वाभाविक संस्था है।

## राज्य का आधार

ग्रीन राज्य की उत्पत्ति के सामाजिक समझौता सिद्धान्त का खण्डन करते हुए राज्य को एक स्वाभाविक संस्था मानता है। राज्य की उत्पत्ति विवेकपूर्ण मानवीय चेतना के कारण हुई है। इसलिए 'राज्य का आधार इच्छा है न कि शक्ति'। राज्य का आधार न तो जन – समझौता या जन – स्वीकृति है और न ही शक्ति बल्कि इच्छा है। ग्रीन का कहना है कि राज्य एक ऐसी संस्था है जो सामाजिक भलाई के लिए कार्य करती है। अतः राज्य सामान्य इच्छा का प्रतिनिधि होती है। लेकिन कभी – कभी सामान्य इच्छा की रक्षा के लिए राज्य को बल का प्रयोग भी करना पड़ता है। वह ऐसा नैतिक विकास के मार्ग में आने वाली बाधाओं को दूर करने के लिए ही करता है। इच्छा राज्य का निचोड़ होती है और शक्ति इसकी कसौटी होती है। परन्तु

राज्य के सार में इसका कोई योगदान नहीं होता। यदि बल प्रयोग जन – स्वीकृति पर आधारित होता है तो सामान्य इच्छा में वृद्धि होती है। ग्रीन का कहना है कि जनता राज्य के कानूनों का पालन इसलिए करते हैं कि ये सामाजिक हित में वृद्धि करते हैं और व्यक्ति को उसे नैतिक विकास में योगदान देते हैं अर्थात् ये व्यक्ति की नैतिक उन्नति के लिए आवश्यक होते हैं। व्यक्ति का हित और भलाई राज्य के आदेशों के पालन करने में हैं अतः सभी व्यक्ति इनका पालन स्वेच्छापूर्वक करते हैं, न कि राज्य की मार्ग में आने वाली बाधाओं का निराकरण करने का साधन मात्र है।

**राज्य की सम्प्रभुता (Sovereignty of the State)**

ग्रीन कहना है कि राज्य में कुछ विघटनकारी तत्त्व भी होते हैं जो अधिकारों के स्वतन्त्र व सही उपयोग के रास्ते में रूकावट पैदा करते हैं। इससे सामान्य हित का मार्ग अवरूद्ध होता है। स्वार्थपूर्ण उद्देश्यों से प्रेरित समाज विरोधी तत्त्वों की दण्डकारी शक्ति से दमन करना आवश्यक होता है। जब कोई व्यक्ति सामान्य इच्छा के विपरीत कार्य करता है तो राज्य को शक्ति का प्रयोग करना पड़ता है। अतः ऐसे लोगों से जो दूसरों के अधिकारों का हनन करते हैं और सामान्य हित के विरूद्ध कार्य करते हैं, समाज की रक्षा करने के लिए जिस शक्ति की आवश्यकता पड़ती है, उसे राज्य की सम्प्रभुता के नाम से जाना जाता है। राज्य का जन्म ही व्यक्ति के अधिकारों की रक्षा के लिए हुआ है। इसलिए राज्य के आदेशों का पालन करना अनिवार्य होता है। अतः राज्य की सम्प्रभुशक्ति के कारण ही अधिकारों की रक्षा होती है।

**राज्य के कार्य (Functions of the State)**

ग्रीन के अनुसार राज्य निम्नलिखित कार्य करता है :–

1. **राज्य व्यक्ति के नैतिक विकास में सहायता करता है :** ग्रीन का कहना है कि राज्य का प्रमुख उद्देश्य व्यक्ति को उसके पूर्ण नैतिक विकास में सहायता पहुँचाना है। इसलिए राज्य को वही कार्य करने चाहिए जो इस उद्देश्य की पूर्ति में सहायक हों। व्यक्ति का नैतिक विकास बाह्य साधनों से सम्भव नहीं

है। राज्य आत्मा के विकास के लिए समाज में नैतिकता का विकास कर सकता है। परन्तु यदि राज्य प्रत्यक्ष रूप से नैतिकता के विकास के कार्य करता है अर्थात् चोरी रोकने जैसे कार्य के लिए कानून बनाता है तो इससे सच्ची नैतिकता का लोप हो जाएगा। इसलिए राज्य को ऐसी परिस्थितियाँ उत्पन्न करनी पड़ती हैं जिनसे सच्ची नैतिकता का विकास होता है। उदाहरणार्थ अशिक्षा, निर्धनता, माद्यपान आदि बुराई आत्मा के व नैतिकता के विकास में बाधक होती है। अतः राज्य का प्रधान कार्य इन बाधाओं को दूर करके व्यक्ति की नैतिक विकास में सहायता करता है।

2. राज्य अनिवार्य शिक्षा का प्रबन्ध करता है। ग्रीन का कहना है कि बिना ज्ञान के व्यक्ति उसकी पंगु है जिस प्रकार वह अंगहीन होने पर पंगु है। इसलिए समाज में विद्यमान बाधाओं को दूर करने के लिए राज्य को आवश्यक शिक्षा की व्यवस्था करनी चाहिए।
3. राज्य को व्यक्ति के नैतिक पतन को रोकने के लिए मद्यपान विरोधी कानून बनाना चाहिए।
4. राज्य द्वारा दोषपूर्ण भूमि – व्यवस्था में सुधार करने चाहिए ताकि सामाजिक विषमता तथा दरिद्रता दूर हो सके।
5. राज्य को व्यक्तिगत सम्पत्ति की रक्षा करनी चाहिए ताकि सामाजिक हित में वृद्धि हो सके।
6. राज्य को स्वास्थ्य सेवाओं की पूर्ण व्यवस्था एवं विस्तार पर जोर देना चाहिए।
7. राज्य को स्त्रियों व बच्चों के लिए विशेष सुरक्षा कार्यक्रम संचालित करने चाहिए।

इस प्रकार ग्रीन ने सकारात्मक तथा नकारात्मक दोनों प्रकार के कार्यों पर जोर दिया है। सकारात्मक दृष्टि से वह चाहता है कि जहाँ भी व्यक्ति के नैतिक विकास के मार्ग में बाधा उत्पन्न हो, वहाँ पर राज्य को हस्तक्षेप करना चाहिए। सकारात्मक रूप में ग्रीन नैतिक विकास के मार्ग में आने वाली बाधाओं को दूर करने के लिए बल प्रयोग की अनुमति भी देता है। नकरात्मक रूप में ग्रीन का कहना है कि व्यक्ति को 'करने योग्य कार्य' करने देने चाहिएं। सैद्धान्तिक रूप में राज्य व्यक्ति के

नैतिक विकास के मार्ग में आने वाले बाधाओं को दूर करने का एक उपकरण है। परन्तु अपने इस नकारात्मक उत्तरदायित्व को पूरा करने के लिए उसे सकारात्मक भूमिका निभानी पड़ती है। ग्रीन का कहा है – "राज्य का सकारात्मक कार्य यह नहीं कि वह अपने नागरिकों को अधिक अच्छा बनाए, उसका निषेधात्मक नैतिक कार्य उन बाधाओं को दूर करना है जो व्यक्ति को अच्छा बनने से रोकती है।" इसलिए व्यक्ति को नैतिक विकास के लिए राज्य को सकारात्मक कार्यों के साथ – साथ निषेधात्मक कार्य भी करने पड़ते हैं।

**राज्य और व्यक्ति में सम्बन्ध (Relationship Between Individual and the State)**

ग्रीन राज्य को व्यक्ति के अधिकारों की सुरक्षा का एक प्रमुख एजेण्ट मानता है। उसके अनुसार राज्य एक साध्य नहीं बन सकता। राज्य की उत्पत्ति मानव चेतना की उपज है। राज्य व्यक्ति के जीवन को अच्छा बनाने के लिए आवश्यक परिस्थितियाँ प्रदान करता है। इसलिए राज्य यदि कोई ऐसा कानून बनाए जो सामान्य हित के प्रतिकूल हो तो व्यक्ति उसका विशेष परिस्थितियों में विरोध भी किया जा सकता है। सामान्य परिस्थितियों में राज्य का विरोध नहीं किया जा सकता। यदि कोई व्यक्ति कानून से असहमत है तो उसे राज्य के कानूनों का विरोध करने की बजाए पालन करने का ही प्रभाव करना चाहिए। इनका विरोध साामान्य हित को आधार मानकर ही किया जा सकता है। राज्य के विरोध का आधार निम्नलिखित परिस्थितियाँ ही हो सकता है :–

1. यदि राज्य द्वारा निर्मित कोई कानून सन्देहपूर्ण हो।
2. यदि कानून सामान्य हित के विरूप हो।
3. शासन में भ्रष्टाचार अपनी चरम सीमा पर पहुँच जाए। जनता के हितों की बजाय जब कानून व्यक्तिगत स्वार्थों के पोषक हों।
4. जब कानून का विरोध करने से शासन – व्यवस्था पर कोई हानिकारक प्रभाव न पड़ता हो।
5. जब राज्य करने योग्य कार्यों से दूर हो जाए।
6. जब राज्य अनुचित तथा अन्यायपूर्ण कानून बना दे तो।

इन परिथितियों में व्यक्ति राज्य व उसके कानूनों का विरोध कर सकता है। लेकिन राज्य का विरोध करते समय व्यक्ति को कुछ बातों का ध्यान रखना चाहिए।

1. राज्य का विरोध सामान्य हित की दृष्टि से किया जाना चाहिए। यदि कोई कानून सामान्य हित के ज्यादा प्रतिकूल नहीं है तो उसका विरोध नहीं करना चाहिए।
2. विरोध जनमत पर आधारित होना चाहिए। यह व्यक्तिगत स्वार्थों पर आधारित नहीं होना चाहिए।
3. विरेाध सामाजिक हित विरोधी बातों का ही होना चाहिए। शेष कानूनों की निष्ठापूर्वक पालन करते रहना चाहिए।
4. विरोध कुछ विशेष परिस्थितियों में ही करना चाहिए। सामान्य परिस्थितियों में इसका प्रयोग नहीं करना चाहिए।
5. विरोध संवैधानिक तरीकों पर आधारित होना चाहिए। शांतिपूर्वक तरीकों का पालन करना चाहिए। हिंसात्मक कार्यों की उपेक्षा करनी चाहिए।

इस प्रकार ग्रीन ने अन्तिम विकल्प के रूप में राज्य के अन्यायपूर्ण कानूनों का विरोध करने के लिए व्यक्ति को विरोध का अधिकार प्रदान किया है। उसने शान्तिपूर्ण तरीके से विरोध का अधिकार प्रयोग करने का सुझाव दिया है। कोई भी व्यक्ति मनमाने ढंग से अपने 'विरेाध के अधिकार' का प्रयोग नहीं कर सकता। इस तरह ग्रीन ने राज्य तथा व्यक्ति दोनों को ही नैतिकता के विकास के लिए आवश्यक मानकर उन्हें अति से बचने का सुझाव दिया है। उसका कहना है कि व्यक्ति और राज्य दोनों को शाश्वत चेतना के अन्तिम लक्ष्य को प्राप्त करने में सहयोग करना चाहिए।

**आलोचना (Criticisms)**

ग्रीन राज्य के कार्यों के सम्बन्ध में जो नकारात्मक दृष्टिकोण प्रस्तुत करता है, वह राज्य के सकारात्मक कार्यों को ही दर्शाता है। उसका कहना है कि व्यक्ति के बौद्धिक विकास के लिए राज्य को स्कूल खोलने चाहिएं तथा मद्यपान पर रोक

लगानी चाहिए। इसलिए ये सभी कार्य ग्रीन के निषेधात्मक कार्य ने होकर सकारात्मक ही हैं। अतः ग्रीन के राज्य सम्बन्धी विचारों में असंगति पाई जाती है। उसका राज्य के विरोध का अधिकार भी महत्त्वहीन है। एक तरफ तो व्यक्ति को राज्य का विरोध का अधिकार प्रदान करता है, दूसरी तरफ वह इस अधिकार के प्रयोग करने के लिए कुछ शर्तें लगाता है। इस अधिकार का प्रयोग व्यवहार में अति कठिन होता है। अतः यह अधिकार निरर्थक प्रतीत होता है।

इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि ग्रीन का राज्य सम्बन्धी सिद्धान्त परस्पर विरोधाभासी वे असंगत विचारों से परिपूर्ण है।

## 6.9 प्राकृतिक कानून सम्बन्धी विचार (Views on Natural Law)

ग्रीन ने पूर्ववर्ती विचारकों के प्राकृतिक कानून (Natural Law) सम्बन्धी विचारों का खण्डन करते हुए इसे नए रूप में पेश किया। उसने इसे सामाजिक चेतना से स्वतन्त्र माना। उसने प्राकृतिक कानून को परिभाषित करते हुए कहा है कि – "यह वह कानून है जिसका पालन मनुष्य को एक नैतिक प्राणी होने के नाते करना चाहिए; चाहे वह राज्य के वास्तविक कानून के अनुकूल हो या प्रतिकूल। ग्रीन के अनुसार प्राकृतिक कानून बुद्धि की उपज होते हैं। इनकी खोज अनुभव द्वारा नहीं की जा सकती। उन्हें इस दृष्टि से प्राकृतिक कहा जा सकता है कि ये समाज के लक्ष्य की प्राप्ति में सहायता करते हैं। इस तरह प्राकृतिक कानून का सम्बन्ध उन सभी बातों से है जिनका अस्तित्व समाज के चरम लक्ष्य की प्राप्ति के लिए आवश्यक है। समाज की नैतिकता के साथ – साथ प्राकृतिक कानूनों में भी अन्तर आता रहता है। राज्य के लिए प्राकृतिक कानूनों को लागू करना जरूरी नहीं होता। परन्तु प्राकृतिक कानून का लागू होने योग्य होना जरूरी होना चाहिए। इन्हें लागू करने की योग्यता ही इन्हें नैतिकता से अलग करती है। प्राकृतिक कानून समाज की नैतिक भावना के विकास के साथ – साथ विकसित होता रहता है। इसे एक ऐसा आदर्श समझा जाता है जो समाज की नैतिक भावना पर आधारित होता है और जिसकी तरफ समाज प्रवृत हो रहा है। ग्रीन ने आगे कहा है कि नैतिकता एक आन्तरिक मानसिक व्यवस्था है और स्वतन्त्रता उसका प्रमुख लक्षण है। उसे शक्ति

द्वारा उत्पन्न नहीं किया जा सकता। शक्ति का प्रयोग करते ही नैतिकता प्राकृतिक कानून की श्रेणी में आ जाती है। इस तरह नैतिकता आन्तरिक व्यवस्था है और प्राकृतिक कानून बाह्य। नैतिकता को कानून द्वारा लागू नहीं किया जा सकता। ऐसा करने से इसका वास्तविक स्वरूप नष्ट होकर प्राकृतिक कानून की जगह ले लेगा। ग्रीन ने प्राकृतिक कानून को सुख – दुःख की कसौटी पर कसते हुए कहा है – "प्राकृतिक कानून के उल्लंघन पर दण्ड मिलता है जबकि नैतिकता के उल्लंघन पर दण्ड का प्रावधान नहीं हो सकता। प्राकृतिक कानून मानव व्यवहार के कुछ स्थिर और निश्चित नियम हैं जबकि नैतिकता शिक्षित और सभ्य मानव प्रकृति का अंग है।" सकारात्मक स्वतन्त्रता में नैतिकता और प्राकृतिक कानून दोनों का समावेश होता है। ज्यों – ज्यों समाज की नैतिक भावना का विकास होता है, वैसे – वैसे प्राकृतिक कानून का भी विकास होता रहता है।

### सामान्य इच्छा पर विचार

ग्रीन का विश्वास हे कि सामान्य हित की चेतना समाज को जन्म देती है। यही सामान्य हित की चेतना 'सामान्य इच्छा' होती है। सामान्य चेतना व्यक्ति के अधिकारों और कर्त्तव्यों को जन्म देकर उनकी रक्षा करने वाली संस्थाओं को भी स्थापित करती है। राज्य इसी सामान्य चेतना का परिणाम है और वह सामान्य इच्छा के प्रतीक के रूप में कार्य करता है। यही सामान्य इच्छा राज्य की सम्प्रभु शक्ति का निर्माण करके अधिकारों और कर्त्तव्यों को मूर्त रूप देती है। सामान्य इच्छा का सभी पालन करते हैं। इसलिए इसे 'सार्वभौम बुद्धिमता पूर्ण इच्छा' भी कहा जाता है। यह समाज का निर्माण करने वाली और उसको एकता के सूत्र में बाँधने वाली सामान्य चेतना है। इसलिए राज्य का आधार इच्छा होती है, शक्ति नहीं। यह राज्य की सम्प्रभु शक्ति होती है।

## 6.10 सामान्य इच्छा पर विचार (Views on General Will )

ग्रीन का विश्वास है कि सामान्य हित की चेतना समाज को जन्म देती है। यही सामान्य हित की चेतना 'सामान्य इच्छा' होती है। सामान्य चेतना व्यक्ति के अधिकारों और कर्त्तव्यों को जन्म देकर उनकी रक्षा करने वाली संस्थाओं को भी

स्थापित करती है। राज्य इसी सामान्य चेतना का परिणाम है और वह सामान्य इच्छा के प्रतीक के रूप में कार्य करता है। यही सामान्य इच्छा राज्य की सम्प्रभु शक्ति का निर्माण करके अधिकारों और कर्त्तव्यों को मूर्त रूप देती है। सामान्य इच्छा का सभी पालन करते है। इसलिए इसे 'सार्वभौम बुद्धिमता पूर्ण इच्छा' भी कहा जाता है। यह समाज का निर्माण करने वाली और उसको एकता के सूत्र में बाँधने वाली सामान्य चेतना है। इसलिए राज्य का आधार इच्छा होती है, शक्ति नहीं। यह राज्य की सम्प्रभु शक्ति होती है।

रूसो की तरह ग्रीन ने भी मानव – स्वभाव की दो इच्छाओं – वास्तविक इच्छा तथा यथार्थ इच्छा का वर्णन किया है। ग्रीन का कहना है कि यथार्थ इच्छा स्वार्थ – प्रधान होती है। यह वैयक्तिक हितों पर आधारित होने के कारण मानव की स्वार्थपूर्ण प्रवृतियों पर आधारित है। जबकि वास्तविक इच्छा एक आदर्श इच्छा होती है। वह समाज हित पर आधारित होने के कारण सामाजिक इच्छा भी कहलाती है। यह वैयक्तिक स्वार्थों से रहित होती है। रूसो का विचार का अनुसरण करते हुए ग्रीन ने कहा है कि व्यक्ति में आदर्श इच्छा जैसे सद् – इच्छा पाई जाती है। यह व्यक्ति को कुछ नैतिक कार्य करने की प्रेरणा देती है। इस तरह व्यक्ति की सद् इच्छाएँ एक ऐसी सामान्य चेतना को उत्पन्न करती हैं जिनका प्रधान उद्देश्य समाज के सामान्य हित में सहायक हो सकने वाले सभी कार्यों को करना है। व्यक्ति सामान्य चेतना के अनुसार कार्य करके अपना शाश्वत चेतना से सम्बन्ध स्थापित करता है। अपने नैतिक विकास तथा सम्पूर्णता की प्राप्ति के लिए व्यक्ति की यही इच्छा रहती है कि वह समाज के सभी व्यक्तियों के हित में ही अपना हित सुरक्षित करे। इस तरह राज्य का जन्म होता है। राज्य व्यक्ति के नैतिक विकास के मार्ग में आने वाली सभी बाधाओं को दूर करता है। इस तरह सामान्य इच्छा सभी प्रकार के कानूनों की भी जननी है। राज्य सामान्य हित में वृद्धि करने के लिए कानूनों का भी निर्माण करता है।

ग्रीन का कहना है कि सामान्य इच्छा सभी नागरिकों में पाई जाती है। समाज में गरीब से गरीब व्यक्ति भी सामान्य हित को समझ सकता है। लेकिन यह चेतना

अधिक प्रगाढ़ नहीं होता। यदि समाज में सामान्य चेतना का सर्वथा अभाव होता है तो राज्य का अस्तित्व ही नहीं होता। इसलिए राज्य का आधार सामान्य इच्छा ही होती है।

### 6.11 दण्ड सम्बन्धी विचार (Views on Punishment)

ग्रीन का दण्ड सम्बन्धी सिद्धान्त उसके राज्य सम्बन्धी सिद्धान्त का आधार है। उसका मानना है कि व्यक्ति की स्वतन्त्रता व अधिकारों की सुरक्षा राज्य कुछ दण्डात्कम उपायों द्वारा ही कर सकता है। ग्रीन का मानना है कि राज्य में कुछ अराजकतावादी तत्त्व भी होते हैं जो समाज हित को हानि पहुँचाते हैं। इनका निराकरण दण्ड द्वारा ही सम्भव हो सकता है। समाज में हत्या, हिंसा, चोरी आदि अपराध व्यक्ति को उत्तम जीवन बिताने में बाधा उत्पन्न करते हैं। इसलिए यदि को व्यक्ति दूसरों को स्वतन्त्रता तथा अधिकारों में अनुचित हस्तक्षेप करता है तो उसे राज्य उसका दण्डात्मक उपायों से ऐसा करने से रोक सकता है। ग्रीन ने कहा है कि –"यदि कोई व्यक्ति समाज विरोधी कार्य करता हो तो राज्य का यह कर्त्तव्य है कि वह इसे दण्ड देकर समाज के अन्य व्यक्तियों के अधिकारों को सुरक्षित बनाए और अपरोधियों का दमन करे।"

ग्रीन के समय में तीन प्रकार के दण्ड सिद्धान्त प्रचलित थे। सबसे पुराना सिद्धान्त प्रतिशोध सिद्धान्त (Retributive Theory) अपराधी को अपराध के अनुकूल सजा का समर्थक था। दूसरे सिद्धान्त निवारक सिद्धान्त (Deterrent Theory) का उद्देश्य अपराधी को ऐसी सजा देना था ताकि वह दोबारा अपराध करने से डरे। तीसरा सिद्धान्त सुधारात्मक सिद्धान्त (Reformatory Theory) था जिसका उद्देश्य अपराधी की आपराधिक प्रवृति में सुधार करना था ताकि वह भविष्य में कोई अपराध न करे। ग्रीन के इन तीनों सिद्धान्तों के दोषों पर भली – भाँति विचार करके इनका खण्डन किया। उसने कहा कि दण्ड का उद्देश्य व्यक्ति के नैतिक विकास के लिए आवश्यक स्वतन्त्र वातावरण और उपयुक्त परिस्थितियाँ बनाना तथा इसमें आने वाली बाधाओं को दूर करना है। उसने कहा समाज विरोधी प्रत्येक तत्त्व से निपटने के लिए दण्ड का होना जरूरी है। उसके अनुसार प्रत्येक अपराध राज्य द्वारा सुरक्षित किए जाने

वाले स्वतन्त्र जीवन और सम्पत्ति के अधिकारों पर किया जाने वाला कुठाराघात है। इसलिए दण्डात्मक शक्ति, प्रभावशाली होनी चाहिए। ग्रीन के अनुसार, "दण्ड का उद्देश्य समाज विरोधी शक्तियों का नाश, उत्तम जीवन की बाधाओं का निराकरण तथा नैतिक विकास के लिए उपयुक्त परिस्थितियों का निर्माण करना है।

### दण्ड का नैतिक आधार (Moral Basis of Punishment)

ग्रीन का कहना है कि दण्ड का उद्देश्य नैतिक होता है। इसे नैतिक इसलिए कहा जा सकता है :–

1. दण्ड का अन्तिम उद्देश्य या चरम लक्ष्य ऐसी परिस्थितियाँ पैदा करना है कि जिन्में समाज का प्रत्येक सदस्य अपने नैतिक विकास के लिए आवश्यक कार्यों का स्वतन्त्रतापूर्वक कर सकता है।
2. यह अपराधी का नैतिक सुधार करता है। दण्ड से व्यक्ति की नैतिक चेतना जागृत होकर अपराधी को नैतिक पथ ले जाती है।

इस प्रकार दण्ड द्वारा समाज विरोधी तत्त्वों पर अंकुश लगाकर व्यक्ति के स्वतन्त्र जीवन व योग्य परिस्थितियों को बनाए रखा जाता है। यह व्यक्ति को उत्तम जीवन बिताने के लिए उसके मार्ग में आने वाली सभी बाधाओं को दूर करता है और प्रत्येक व्यक्ति को अपने नैतिक विकास के लिए अनुकूल परिस्थितियाँ प्रदान करता है।

## 6.12 युद्ध पर विचार (Views on War)

ग्रीन हीगल के युद्ध सम्बन्धी विचारों की आलोचना करते हुए युद्ध को एक बुराई मानता है। वह हीगल के इस विचार से सहमत नहीं है कि युद्ध व्यक्ति के नैतिक स्तर को ऊँचा करता है। ग्रीन का मानना है कि युद्ध मानव जीवन को नष्ट करता है। उसका कहना है कि युद्ध अनावश्यक, हानिकारक और अनैतिक उपकरण है। युद्ध एक अपूर्ण राज्य का लक्षण है। पूर्ण राज्य को युद्ध की आवश्यकता नहीं होती। उसने कहा कि युद्ध केवल विशेष परिस्थितियों में ही सापेक्ष हो सकता है। परन्तु पूर्णतः उचित कभी नहीं हो सकता। ग्रीन का कहना है कि – "युद्ध की कोई भी अवस्था मनुष्य जीवन के विकास को सही नहीं बना सकती, यद्यपि उसकी गलती

की उसके समस्त पक्षों पर सदैव नहीं मढ़ा जा सकता।" युद्ध विश्व–बन्धुत्व की भावना को ठेस पहुँचाता है। जब हम राष्ट्रीय क्षेत्र में युद्ध को वर्जित मानते हैं तो उसे अन्तराराष्ट्रीय क्षेत्र में अस्वीकार क्यों करते हैं। यह असंगति भयानक परिस्थितियाँ पैदा करती है। इस अंसगति को दूर करके युद्ध की आवश्यकता का अन्त किया जा सकता है।

युद्ध को किसी भी प्रकार से न्यायोचित नहीं माना जा सकता, क्योंकि यह व्यक्ति के जीवन के अधिकार को वंचित करता है। युद्ध एक अपूर्ण राज्य का लक्षण होता है। उसके अनुसार युद्ध इसलिए होते हैं कि राज्य अपने कार्यों को पूर्ण रूप से नहीं कर सकते। राज्य को संगठन जितना अधिक पूर्ण होगा, युद्ध के अवसर उतने ही कम होंगे। ग्रीन ने कहा है – "राज्य का आन्तरिक संगठन जितना ही अधिक पूर्ण हो जाता है, अन्तराष्ट्रीय संघर्ष के ध्येय और अवसर उतने ही अधिक लुप्त होने लगते हैं और एकता के बन्धन दृढ़तर हो जाते हैं।"

ग्रीन का कहना है कि युद्ध गलतियों को सुधारने का उचित साधन नहीं हो सकता। यह किसी राज्य का आधारभूत तत्त्व नहीं हो सकता। युद्ध सामान्य हित के विपरित होता है। इसलिए कुछ स्वार्थी तत्त्वों के हितों को पूरा करने के लिए सामान्य हित की उपेक्ष नहीं की जानी चाहिए। किसी को स्वार्थवश मारना नैतिक कार्य नहीं हो सकता। युद्ध एक नैतिक गलती होता है। इससे नैतिकता का पतन होता है। युद्ध से वीरता तथा आत्म–बलिदान जैसे गुणों के विकास के नाम पर जन–संहार करना। कभी मानवीय दृष्टि से मान्य नहीं हो सकता। इन गुणों के विकास के नाम पर युद्ध को अनिवार्य नहीं माना जा सकता। युद्ध के बिना भी व्यक्ति में नैतिक गुणों का विकास अन्य साधनों द्वारा भी किया जा सकता है। देशभक्ति का प्रदर्शन युद्ध के द्वारा करना कभी उचित नहीं माना जा सकता। देशभक्ति और युद्ध से तालमेल बिठाना तर्कसंगत नहीं हो सकता।

इस प्रकार ग्रीन हीगल द्वारा प्रतिपादित युद्ध सम्बन्धी विचारों का पूर्ण खण्डन करता है। उसका कहना है कि वांछित उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए राज्य के पास युद्ध के अलावा अन्य बहुत सारे साधन होते हैं। युद्ध एक अनैतिक साधन है, इससे

मानवता का भारी नुकसान होता है। इसलिए युद्ध हर अवस्था में अवांछनीय और अनुचित है। इसे किसी भी अवस्था में नैतिक और उचित नहीं माना जा सकता। पूर्ण राज्य के रूप में इस बुराई का अन्त किया जा सकता है।

## 6.13 सम्पत्ति सम्बन्धी विचार (Views on Property)

सम्पत्ति के बारे में ग्रीन का दृष्टिकोण अधिक उदारवादी है। उसने सम्पत्ति के अधिकार को स्वतन्त्रता के अधिकार का उपसिद्धान्त स्वीकार किया है। उसका कहना है कि यदि एक व्यक्ति को अपने कार्यों को स्वतन्त्रतापूर्वक नैतिक आदर्श के अनुसार निर्धारित करने का अधिकार है तो उसे उसके पास आवश्यक साधन भी होने चाहिए। ग्रीन का कहना है कि मनुष्य के व्यक्तित्व के विकास के लिए सम्पत्ति का होना अपरिहार्य है। प्रत्येक व्यक्ति को सम्पत्ति पैदा करने का अवसर प्राप्त होना चाहिए क्योंकि प्रत्येक जीवन में सामान्य सामाजिक कार्यों में भाग लेने की शक्ति होती है। इस प्रकार कहा जा सकता है कि सम्पत्ति समाज के सर्वोत्तम जीवन में सहायक बनने वाले व्यक्ति के लिए आवश्यक और उपयोगी साधनों का समूह होती है। यह इच्छा – पूर्ति का साधन है।

सम्पत्ति को परिभाषित करते हुए ग्रीन ने कहा है कि –"सम्पत्ति उन समस्त साधनों का योग है जो मनुष्य में आत्मानुभूति के सिद्धान्त के स्वतन्त्र विकास और सामान्य हित में योग्य देने के लिए आवश्यक है। स्वतन्त्र अभिव्यक्ति की मांग करते हुए शाश्वत चेतना के अंश मानव आत्मा ने जिन वस्तुओं को प्राप्त कर लिया है, वह उसी का प्रतिफल है।"

ग्रीन का कहना है कि जिसके पास व्यक्तिगत सम्पत्ति है, उन्हे सदैव उसका प्रयोग सामान्य हित क लिए करने की आवश्यकता नहीं है। केवल सम्पत्ति का सम्भावित लक्ष्य ही सामाजिक हित होना चाहिए। सामान्य हित के लिए व्यक्तिगत सम्पत्ति का बलात् प्रयोग अनुचित होगा। आगे वह कहता है कि सम्पत्ति की असमानता सम्भव तथा उचित है। सामाजिक हित के लिए सभी व्यक्तियों के पास साधनों का अलग – अलग बँटवारा होना आवश्यक होता है। सामाजिक हित का पूर्ण सम्पादन करने

के लिए सम्पत्ति की विषमता उचित है। लेकिन सम्पत्ति का अनियन्त्रित संचय सामाजिक हित का पूर्ण सम्पादन करने के लिए सम्पत्ति की विषमता उचित है। लेकिन सम्पत्ति का अनियन्त्रित संचय सामाजिक हित की दृष्टि से उचित नहीं हो सकता। उसका मत है कि यदि व्यक्तियों को अपनी स्वतन्त्र – इच्छा की पूर्ति में बाधा पहुँचे तो व्यक्तियों द्वारा धन से भय की प्रवृति पर अंकुश लगाना चाहिए। सरकार सम्पत्ति की प्राप्ति तथा उसके वितरण पर कुछ मर्यादाएँ लग सकती है।

ग्रीन ने व्यक्तिगत सम्पत्ति के दोषों के दूर करने का सुझाव भी दिए हैं। उसका कहना है बड़े – बड़े भूमिपतियों के वर्ग का उन्मूलन करके असीमित असमानता को कम किया जा सकता है। वह ऐसी सम्पत्ति की व्यवस्था का विरोध करता है जो विशेष वर्ग के हितों की पोषक हो। उसका कहना है कि भूमि – हीन तथा सम्पत्ति हीन वर्ग का जन्म पूंजीवाद का परिणाम न होकर दोषपूर्ण भूमि – व्यवस्था का परिणाम है। जब राज्य अपने कर्त्तव्यों से मुख मोड़ लेता है तो इस प्रकार की सम्पत्ति का जन्म होता है जो बहुत अधिक दोषपूर्ण होती है। इस दोषपूर्ण प्रणाली का व्यक्तिगत सम्पत्ति को नष्ट किए बिना ही सरकारी कानून बनाकर निराकरण करना सम्भव होता है।

ग्रीन समाजवादियों के सम्पत्ति सम्बन्धी विचारों का खण्डन करते हुए कहता है कि संसार में सम्पत्ति की विषमता का अस्तित्व में रहना आवश्यक मानता हैं समाजवादियों का कहना है कि व्यक्तिगत सम्पत्ति और सम्पत्ति की विषमता ही समाज के सब दोषों का कारण है। लेकिन ग्रीन कहता है कि पुंजी का प्रयोग सदैव सामाजिक कल्याण के लिए होता है। बड़े – बड़े उत्पादन के साधन इसी का परिणाम होत हैं। परन्तु यदि निजी सम्पत्ति सामाजिक हित के मार्ग में बाधा बनती हो तो इसकी निन्दा की जा सकती है।

### आलोचना (Criticisms)

ग्रीन के व्यक्तिगत सम्पत्ति सम्बन्धी विचारों की अनेक आधारों पर आलोचना हुई है। उसकी आलोचना के निम्नलिखित आधार हैं :–

1. यह सिद्धान्त परस्पर विरोधाभासी है। एक ओर तो ग्रीन सम्पत्ति के संचय की छूट देता है और दूसरी तरफ भू – सम्पत्ति के संग्रह को दरिद्रता का कारण मानता है।
2. यह सिद्धान्त वर्तमान समाजवादी सिद्धान्तों के सर्वथा विपरीत है। वह सम्पत्ति की विषमता तथा पूंजीवाद को न्यायोचित ठहराता है। इससे समाजवाद का विरोध किया गया है। सत्य तो यह है कि आधुनिक युग में समाजवादी सिद्धान्त अत्यन्त लोकप्रिय हो रहे हैं।
3. इस बात की कोई गारण्टी नहीं दे सकता कि व्यक्तिगत सम्पत्ति का प्रयोग सामाजिक हित के अनुसार किया जाएगा।

इस प्रकार ग्रीन के सम्पत्ति सम्बन्धी विचार अत्यन्त संकीर्ण व परस्पर विरोधाभासी हैं। ये वर्ग – संघर्ष के पोषक है। उसके विचार आधुनिक समाजवादी व्यवस्था के अनुकूल नहीं है। उन्हे आधुनिक युग में लागू करने का अर्थ होगा, सामाजिक विषमता को बढ़ावा देना। उसका यह सिद्धान्त आवश्यकता से अधिक उदारवादी है। इसे व्यवहार में लागू नहीं किया जा सकता।

## 6.14 ग्रीन का योगदान (Green's Contribution)

ग्रीन राजनीतिक चिन्तन के इतिहास में एक महत्त्वपूर्ण दार्शनिक हैं। उनके दर्शन में सत्तावाद, व्यक्तिवाद और आदर्शवाद का अनूठा मिश्रण देखने को मिलता है। उसने व्यक्ति और राज्य दोनों को समाज महत्त्व देकर आदर्शवाद को अधिक अच्छा बनाया है उसने व्यक्तिवाद को नैतिक और सामाजिक आधार प्रदान किया है। इससे उदारवाद का सच्चा रूप निखरकर हमारे सामने आया है। इसी कारण से ई०एन० बर्नज ने उसे बीसवीं शताब्दी के 'उदारवाद का जनक' कहा है। उसकी प्रमुख देन निम्नलिखित हैं :–

ग्रीन राजनीतिक चिन्तन के इतिहास में एक महत्त्वपूर्ण दार्शनिक हैं। उनके दर्शन में सत्तावाद, व्यक्तिवाद और आदर्शवाद का अनूठा मिश्रण देखने को मिलता है। उसने व्यक्ति और राज्य दोनों को समान महत्त्व देकर आदर्शवाद को अधिक अच्छा बनाया है। उसने व्यक्तिवाद को नैतिक और सामाजिक आधार प्रदान किया है। इससे उदारवाद का सच्चा रूप निखरकर हमारे सामने आया है, इसी कारण से ई० एन० बर्नज से उसे बीसवीं शताब्दी के 'उदारवाद का जनक' कहा है। उसकी प्रमुख देन निम्नलिखित है :–

1. **उदारवाद और उपयोगितावाद को समसामयिक बनाना** : ग्रीन ने उदारवाद और उपयोगितावाद में आवश्यक संशोधन करके इन्हें समयानुकूल बनाकर इसमें नवजीवन का संचार किया और सुदृढ़ आधार प्रदान किया। जान स्टुअर्ट के समय तक आते – आते उपयोगितावाद निष्प्राण हो चुका था। बेन्थम और मिल ने मनुष्य के कार्यों का मूल प्रेरणा स्त्रोत विशुद्ध स्वार्थ – बुद्धि ओर सुख को मानकर इसे कोरा सुखवाद बना दिया था। लेकिन ग्रीन ने पूर्ववर्ती उपयोगितावादियों के विचारों में बिखरे हुए सिद्धान्तों का एकीकरण किया और परस्पर विरोधी विचारों को नया रूप दिया। उसने यह सिद्धान्त प्रतिपादित किया कि मनुष्य कोरा भौतिकवादी जीव नहीं है, बल्कि दूसरे का हित चाहने वाला तथा आत्मा का विकास करने वाला प्राणी भी है। ग्रीन ने राज्य को व्यक्ति का नैतिक विकास करने वाला यन्त्र बताया। इस तरह उसने राजनितिक चिन्तन को आध्यात्मिक और नैतिक आधार देकर एक सुदृढ़ रूप प्रदान किया। उसने आर्थिक जीवन में राज्य के हस्तक्षेप को न्यायोचित ठहराकर इंगलैण्ड के भावी राजनीतिक सुधारों का 2 मार्ग प्रशस्त किया। उसने उदारवाद में सामाजिक दर्शन से परिवर्तन किए और उसे इंगलैण्ड की दृष्टि से उपयोगी बनाया। उसने उदारवाद को एक रूचि मात्र से ऊपर उठकर एक विश्वास बना दिया।

2. **आदर्शवाद का नया रूप :** उसने हीगल के राज्य को साध्य मानने के विचार का खण्डन किया और युद्ध की अनिवार्यता को समाप्त कर दिया। उसने कहा

कि व्यक्ति स्वंय एक साध्य है और उसके हितों का राज्य के लिए बलिदान करना न्ययायोचित नहीं है। उसने आगे कहा कि युद्ध किसी भी स्थिति में अपरिहार्य नहीं हो सकता। उसने अन्तरराष्ट्रीयवाद और विश्व–बन्धुत्व की भावना का विकास करके युद्धों से दूर रहने की सलाह दी। उसने जर्मन आदर्शवाद को उसकी कठोरता से निकालकर उसे अधिक उदारवादी बनाया। उसने अत्याधिक व्यक्तिवाद और कठोर आदर्शवाद की बुराइयों की दूर करके इन दोनों में समन्वय का प्रयास किया। उसने कहा कि राज्य और व्यक्ति के हितों में कोई विरोध नहीं है। वेपर ने कहा है कि – "ग्रीन की सबसे बड़ी देन यह है कि उसने आदर्शवाद को परिमार्जित कर एक सभ्य विचार में बदल दिया।" बार्कर ने भी कहा है कि –"ग्रीन एक महत्त्वकांक्षी आर्दशवादी तथा भद्र वास्तविकतावादी था।" इस तरह ग्रीन ने अपने आदर्शवाद को 'सामाजिक औचित्यता' की धारणा पर आधारित करके उसे अधिक सभ्य और सुरक्षित बनाया।

3. **सकारात्मक स्वतन्त्रता की धारणा :** ग्रीन ने स्वतन्त्रता के नए सिरे से परिभाषित करते हुए कहा कि स्वतन्त्रता करने योग्य कार्यों की होती है। उसने स्वतन्त्रता को शाश्वत चेतना के साथ जोड़कर इसे एक नैतिक माँग का रूप दिया और इसे मानव चेतना के नैतिक विकास की अनिवार्य परिस्थिति बताया, उसने आगे कहा कि राज्य द्वारा व्यक्तियों के विकास के लिए अधिक से अधिक सुविधाएँ प्रदान करनी चाहिए ताकि वे अपना नैतिक विकास कर सके। इस तरह उनका स्वतन्त्रता का विचार सकारात्मक है। उसने हीगल तथा काण्ट के नकारात्मक स्वतन्त्रता सिद्धान्त का विरोध किया।

4. **कल्याणकारी राज्य का मार्ग प्रशस्त करना :** ग्रीन ने कहा कि राज्य का प्रमुख कार्य व्यक्ति का नैतिक विकास करना है। इसके मार्ग में आने वाली बाधाओं को दूर करना उसका प्रमुख कर्त्तव्य है। इसी में उसका सामाजिक कल्याण का उद्देश्य निहित है। उसने कहा कि राज्य को सर्वसाधारण के कल्याण के लिए शिक्षा और सुरक्षा, मद्यपान पर रोक, दोषपूर्ण, भूमि – व्यवस्था में सुधार, स्वास्थ्य सेवाओं में सुधार आदि कार्य करने चाहिए। इससे उसने कल्याणकारी

राज्य का मार्ग प्रशस्त किया है। यह उसकी महत्त्वपूर्ण देन मानी जा सकती है।

5. **सीमित प्रभुसत्ता का सिद्धान्त :** ग्रीन ने राज्य पर बाह्य तथा आन्तरिक प्रतिबन्ध लगाकर सीमित प्रभुसत्ता का सिद्धान्त प्रतिपादित किया। उसने व्यक्ति को साध्य और राज्य को एक साधन मानकर राज्य की निरंकुश सम्प्रभुता का अन्त कर दिया है। उसने राज्य की शक्ति पर विश्व – बन्धुत्व या अन्तरराष्ट्रीय का अंकुश लगाकर बाह्य शक्ति के रूप में उसे सीमित रूप में सम्प्रभु बना दिया।

6. **राज्य का आधार सम्बन्धी सिद्धान्त :** ग्रीन उन सभी राजनीतिक विचारकों के विचारों का खण्डन किया जो राज्य का आधार शक्ति को मानते थे। ग्रीन ने कहा कि राज्य का आधार इच्छा है न कि शक्ति। उसने बताया कि शक्ति पर आधारित राज्य अपूर्ण राज्य होते हैं। उनमें स्थायित्व का गुण नहीं पाया जाता। जनसहमति पर आधारित राज्य ही पूर्ण और स्थायी होते हैं।

## 6.15 निष्कर्ष (Conclusion)–

ग्रीन की राजनीतिक दर्शन को देन का वर्णन वेपर के शब्दों में किया जा सकता है, ''कि उसने अंग्रेजों के उस मूल्य पर जोकि वे देने को तैयार थे। बेंथमवाद से अधिक संतोष प्रदान करने वाली चीज दी; उसने उदारवाद को एक रूचि मात्र के स्थान पर एक विश्वास बना दिया; उसने व्यक्तिवाद को नैतिक तथा सामाजिक और आदर्शवाद को सभ्य तथा आपत्ति रहित बनाया। कम से कम अंग्रेज लोग इस देन को तुच्छ नहीं समझ सकते।'' उसने उपयोगितावाद को नैतिक आधार प्रदान किया। उसने व्यक्तिवाद तथा उदारवाद के साथ सामाजिकता के साथ जोड़ दिया। उसने व्यक्तिगत सम्पति का समर्थन इस आधार पर किया कि वह सामान्य हित की सामान्य इच्छा की अनुभूति के लिए आवश्यक है। राज्य की अवज्ञा करना भी तभी उचित है जबकि वह समाज के नाम में तथा साथ ही साथ सामान्य हित के लिए हो। राज्य की अवज्ञा करना भी तभी उचित है जबकि वह समाज के नाम में तथा

सामान्य हित में हो। इस प्रकार ग्रीन ने नकारात्मक उदारवाद को सकारात्मक उदारवाद की ओर ले जाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

## 6.16 शब्दावली (Keywords)–

प्रतिशोधात्मक – बदले की भावना से दिया जाने वाला दण्ड।

प्रतिशोधात्मक – दूसरों के मन में भय उत्पन्न करने हेतू कठोर दण्ड

सुधारात्मक – अपराधी में सुधार हेतु दण्ड

## 6.17 स्वमूल्याकंन (Self-Assessment)

### लघु उत्तरीय प्रश्न

(1) ग्रीन के राजनीतिक विचारों पर प्रभाव डालने वाले कारक कौन से हैं?

(2) ग्रीन के दण्ड सम्बन्धी विचारों पर संक्षिप्त टिप्पणी करें।

(3) ग्रीन के सम्पति के अधिकार पर नोट लिखें।

(4) टी.एच.ग्रीन के मानवीय नैतिकता पर क्या विचार हैं?

### दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

(1) ''राज्य का आधार इच्छा है, शक्ति नहीं'', व्याख्या करें।

(2) ग्रीन के अनुसार अधिकारों का विधि तथा नैतिकता से क्या सम्बन्ध है।

(3)ग्रीन के स्वतन्त्रता सम्बन्धी विचारों पर प्रकाश डालिए।

(4) राजनीतिक चिंतन में ग्रीन के योगदान का आलोचनात्मक मूल्यांकन कीजिए।

## 6.18सन्दर्भ सूची–


1. प्रभुदत्त शर्मा, राजनीतिक विचारों का इतिहास (प्लेटो से मार्क्स), कॉलेज बुक डिपो, जयपुर, 1967.
2. बी.एल.फाड़िया, पाश्चात्य राजनीतिक चिन्तन का इतिहास (प्लेटो से मार्क्स), साहित्य भवन पब्लिकेशन, आगरा, 2018.
3. जे.पी.सूद, पाश्चात्य राजनीतिक विचारों का इतिहास (भाग–प्राचीन व मध्यकालीन), जे.नाथ एण्ड कंपनी, मेरठ, 2008.

4. सेबाइन, ए हिस्ट्री ऑफ पॉलिटिकल थ्योरी, न्यूयार्क, 1973
5. पुखराज जैन, राजनीतिक विज्ञान के सिद्धान्त, साहित्य भवन, आगरा, 1988.
6. रघुवीर सिंह, मध्यकालीन विश्व का इतिहास, रावत प्रकाशन, नई दिल्ली
7. ब्रायन आर. नेल्सन, वेस्टर्न पॉलिटिकल थॉट, वेवलैंड प्रकाशन, 1996.
8. डी. बॉशर व पी. कैली, पॉलिटिकल थिंकरसः फ्रॉम सॉकरेटिज टू द प्रेजेंट, ऑक्सफोर्ड, 2009.
9. जे.कॉलमैन, ए हिस्ट्री ऑफ पॉलिटिकल थॉटः फ्रॉम एंशियट ग्रीस टू अर्ली प्रिस्टियनीटी, ऑक्सफोर्ड, 2000.
10. सी.बी.मैकफर्सन, द पॉलिटिकल थ्योरी ऑफ पसैसिव इंडिवियुलिज्मः हॉब्स टू लॉक, 1962.
11. ली. स्ट्रॉस, हिस्ट्री ऑफ पॉलिटिकल फिलॉस्फी, शिकागो यूनिवर्सिटी प्रैस, 1987.